www.vi in

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक– साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : २०

सोमवार १७ फरवरी, '६९

अन्य पृष्ठों पर

इसको क्या कहें ? —खादिम २४२

जॉन-जॉन : १४१५-१९६९ —सम्पादकीय २४३

मिर्ज़ा ग़ालिब —क० द० अ० २४४

जन-शक्ति का उभरता स्वरूप —विनोबा २४५

अहिंसा : दुहरी विजय की शक्ति —डा० मार्टिन लूथर किंग २४७

मुरैना की अराजक स्थिति —गुरुशरण २४९

बिहार में पुष्टि-कार्य... —निर्मलचन्द्र २५१

संयुक्त मंच की शानदार सफलताएँ —कैलाश प्रसाद शर्मा २५३

मुंगेर जिलादान समर्पण-समारोह —कृष्णकुमार २५६

अन्य स्तम्भ

अखबार की कतरन, आंदोलन के समाचार

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी–१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

गाँवों को भुला देना एक अपराध

यह हिन्दुस्तान की बदकिस्मती है कि जैसी दलबन्दी और मतभेद उसके शहरों में हैं, वैसे ही देहातों में भी देखे जाते हैं। और जब गाँवों की भलाई का ख्याल न रखते हुए अपनी पार्टी की शक्ति बढ़ाने के लिए गाँवों का उपयोग करने के ख्याल से राजनीतिक सत्ता की बू हमारे देहातों में पहुँचती है, तो उससे देहातियों को मदद मिलने के बजाय उनकी उन्नति में रुकावट ही होती है। मैं तो कहूँगा कि चाहे जो नतीजा हो, फिर भी हमें ज्यादा-से-ज्यादा मात्रा में स्थानीय मदद लेनी चाहिए। और अगर हम राजनीतिक सत्ता हड़पने की बुराई से दूर रहें तो हमारे हाथों कोई बुराई होने की सम्भावना नहीं रहती।

हमें याद रखना चाहिए कि शहरों के अंग्रेजी पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों ने हिन्दुस्तान के आधारभूत गाँवों को भुला देने का अपराध किया है। इसलिए आज तक की हमारी इस लापरवाही को याद करने से हममें धीरज पैदा होगा। अभी तक मैं जिस-जिस गाँव में गया हूँ, वहाँ मुझे एक-न-एक सच्चा कार्यकर्ता जरूर मिला है।

लेकिन गाँवों में भी लेने लायक कोई अच्छी चीज होती है, ऐसा मानने की नम्रता हममें नहीं है और यही कारण है कि हमें वहाँ कोई कार्यकर्ता नहीं मिलता। बेशक, हमें स्थानीय राजनीतिक मामलों से परे रहना चाहिए। लेकिन हम यह तभी कर सकते हैं जब हम सारी पार्टियों की और किसी भी पार्टी में शामिल न होनेवाले लोगों की सच्ची मदद लेना सीख जायँगे। अगर हम गाँववालों से अलग रहेंगे, या उन्हें अपने कामों से अलग रखेंगे तो हमारा किया-कराया सब व्यर्थ जायेगा। इस कठिनाई का मुझे ख्याल था, इसीलिए एक गाँव में एक कार्यकर्ता रखने के नियम को दृढ़तापूर्वक पालने की मैंने कोशिश की है।

अभी तो मैं यही कह सकता हूँ कि इस तरीके से मेरा काम अच्छा चल रहा है। यहाँ मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि किसी नतीजे पर जल्दी से पहुँच जाने की हमें बुरी आदत पड़ गयी है। एक सवाल करनेवाले भाई कहते हैं कि :

'इस तरह जारी रखा जानेवाला काम बाहर की मदद से ही चलता है। और इस तरह की मदद के बंद होते ही वह भी समाप्त हो जाता है।'

किसी काम में झट से इस तरह का दोष निकालने से पहले मैं तो यह कहूँगा कि किसी एक गाँव में कुछ साल रहकर वहाँ के कार्यकर्ताओं के जरिये काम करने का अनुभव भी इस बात का पूरा प्रमाण नहीं माना जायगा कि स्थानीय कार्यकर्ता खुद कोई काम नहीं कर सकते या उनके द्वारा कोई काम नहीं हो सकता।

—मो० क० गांधी

'हरिजन सेवक', २–३–'४७ : पृष्ठ–३९

सामयिक चर्चा

इसको क्या कहें ?

कलकत्ता में अभी एक घटना घटी जिसकी ओर हर चेतन भारतीय का ध्यान जाना चाहिए।

२६ जनवरी के अपने गणतंत्र विशेषांक में कलकत्ता के अंग्रेजी दैनिक 'स्टेट्समैन' ने प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार श्री आर्नल्ड टायनबी का लिखा हुआ और 'गांधी पीस फाउण्डेशन' के सौजन्य से प्राप्त और सरकार द्वारा प्रसारित, एक लेख छापा जिसका शीर्षक था 'रेलिवेंस आव गांधियन क्रीड इन दी अटामिक एज'। जितना बड़ा लेखक है, उतना ही अच्छा यह लेख है। राजनीति-जैसी गंदी चीज को गांधी ने कितना ऊँचा उठाया, किंतु अपने को उस गंदगी से किस खूबी के साथ अलग रखा, यह बताते हुए टायनबी ने लेख के अन्त में गांधीजी की अशोक, बुद्ध और हजरत मुहम्मद से तुलना की है। तुलना इस दृष्टि से की है कि इतिहास की इन विभूतियों का राजनीति के सम्बन्ध में क्या रुख और रोल रहा। विवेचन ऐतिहासिक दृष्टि से तथा तथ्यों के आधार पर किया गया है; निष्कर्ष लेखक के अपने हैं। लेखक ने लिखा है :

"मुहम्मद की तरह गांधी जानबूझकर राजनीति में गये। मुहम्मद राजनीति में व्यक्तिगत जीवन में विशेष संकट के कारण गये; गांधी के साथ यह बात नहीं थी।… मुहम्मद मसीहा थे। मुहम्मद ने राजनीति में जाने के अवसर का इस्तेमाल कर लिया, उस वक्त जब कि मसीहा के रूप में वह विफलता के करीब थे। मुहम्मद राजनीतिक दृष्टि से सफल हुए, लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से उनकी क्षति हुई। कम-से-कम ऐसा मुहम्मद के जीवन को सहानुभूति के साथ अध्ययन करनेवाले एक गैर-मुस्लिम विद्यार्थी को लगता है।"

इस लेख पर २९ जनवरी के 'स्टेट्समैन' में कुछ मुस्लिम सज्जनों के हस्ताक्षर से एक पत्र छपा। उसमें यह आपत्ति की गयी कि लेख 'हमारे नबी हजरत मुहम्मद की तुलना महात्मा गांधी के साथ इस तरह करता है जिससे नबी की छोटाई होती है और मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचती है।… हमारे धर्म का तकाजा है कि नबी की तुलना किसी राजनीतिक नेता से न की जाय। चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो।'

पूरा घटना-चक्र इस प्रकार है। २६ को मूल लेख छपा। २९ को पत्र छपा। ३० को कलकत्ता के स्टेट्समैन हाउस के सामने शोर-गुल के साथ प्रदर्शन हुआ। ३१ को प्रातः एक बड़ी भीड़ इकट्ठा हुई। पुलिस वहां मौजूद थी। इस बीच कुछ मुस्लिम संस्थाओं की ओर से, जिनके साथ प्रमुख कांग्रेसजन जुड़े हुए हैं, प्रतिनिधित्व हुआ।

३१ को भीड़ तैयार होकर गयी थी। बहुतों के हाथ में लाठियां थीं; एक बम भी फूटा। सुबह १० बजे 'स्टेट्समैन' के सामने प्रदर्शन हुए। मुसलमानों के प्रतिनिधि-मण्डल ने सम्पादक से मुलाकात की, और मुलाकात के बाद वापस जाने के बजाय 'स्टेट्समैन' के दफ्तर के सामने प्रदर्शनकारियों को संबोधित, उत्तेजित करना शुरू कर दिया। इसके बाद स्थिति बिगड़नी शुरू हुई। उपद्रव हुआ। घटना-स्थल पर पुलिस की गोली से चार आदमी जान से मारे गये। ६७ घायलों में २२ पुलिसवाले थे। पुलिस ने पूरे धैर्य से काम लिया और लाठीचार्ज और आंसू-गैस के विफल होने के बाद गोली चलायी। दो जीप और एक पान की दूकान में आग लगा दी गयी। फल और पान की कई दूकानों को तोड़-फोड़ डाला गया। पूरे कलकत्ते में धारा १४४ लागू कर दी गयी।

१ फरवरी के अंक में मुखपृष्ठ पर अखबार ने सफाई छापी और लिखा कि जानबूझकर किसी सम्प्रदाय को ठेस पहुंचाने की नीयत नहीं थी। फिर भी अगर ठेस पहुंची तो उसे खेद है।

१ फरवरी के ही अंक में 'वायलेंस इन डिसेन्ट' शीर्षक की टिप्पणी में सम्पादक ने लिखा : "यह किसी तरह असंभव नहीं है कि ९ फरवरी के चुनाव के कारण जो राजनीतिक दलबन्दी चल रही है उसीसे शुक्रवार की शर्मनाक घटनाओं को प्रेरणा मिली।" अन्त में उसने लिखा : "दिल से आशा है कि उन व्यक्तियों और संस्थाओं को अब भी अकल आयेगी जो राजनीति को मनुष्यता के ऊपर रखते हैं।"

यह है जो कलकत्ता में ३१ जनवरी को हुआ। उन लोगों के द्वारा हुआ जो हजरत मुहम्मद साहब की शान रखना चाहते थे, और उन लोगों की प्रेरणा से हुआ जो हरवक्त मानव-हृदय के हर विकार को गद्दी का हथकंडा बनाने के लिए तैयार बैठे रहते हैं। इस सारे कांड से दो प्रश्न पैदा होते हैं। एक यह कि शुद्ध बुद्धि और तटस्थ विज्ञान को हम कितनी छूट देने को तैयार हैं या विज्ञान उतना ही बोल पायेगा जितनी हमारी कट्टरता और हमारा पक्षपात उसे बोलने देगा? दूसरा यह कि इस देश में राजनीति बेलगाम ही रहेगी या उस पर भी कोई अंकुश लगेगा? क्या वह कभी मनुष्यता को पहचानेगी? प्रश्न इस सम्प्रदाय या उस सम्प्रदाय का नहीं है, प्रश्न है पूरे सम्प्रदायवाद का। उसी तरह प्रश्न इस दल या उस दल का नहीं है, प्रश्न है पूरे दलवाद का। सम्प्रदायवाद की जड़ अज्ञान और पिछले इतिहास में तो है ही, लेकिन उसे नया रूप दलवाद से मिल रहा है। फिर भी कलकत्ते के मुसलमान भाइयों को इतना तो सोचना ही चाहिए कि उन्होंने शान्तिदूत हजरत मुहम्मद साहब की शान बढ़ायी नहीं है। भारत जैसे विभिन्न जातियों, विश्वासों और सम्प्रदायों के देश में असहिष्णुता का हर प्रदर्शन, चाहे वह जिसके द्वारा हो, देश की शांति और सुव्यवस्था में बाधा पहुंचाता है। —खादिम

आमोद तालुका ग्रामस्वराज्य के पथ पर

गुजरात का आमोद तालुका शीघ्र ही ग्रामदान में आ जायगा। गत १३ से २० जनवरी तक हुई पदयात्राओं में ५५ में से २३ गांव ग्रामदानी घोषित हुए हैं। उक्त २३ गांवों को मिलाकर ४४ गांवों ने ग्रामदान हेतु संकल्प किया है।

सम्पादकीय

जॉन-जॉन : १४१५-१९६९

'हमारे देश की जनता विनाश के कगार पर खड़ी है। हमलोगों ने ऐसे स्वयंसेवकों की टोली बनायी है जिन्होंने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आत्म-दाह करने का निर्णय किया है।...मुझे प्रथम आत्मदाही बनने, प्रथम पत्र लिखने, और प्रथम मानवीय टार्च बनने का गौरव मिला है।'

अपने अंतिम पत्र में यह सूचना छोड़कर २१ वर्ष का चेक युवक, चार्ल्स विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र का विद्यार्थी, जॉन पालाच ने आत्मदाह कर डाला। उसके 'देश की जनता विनाश के कगार पर खड़ी है', यह दुनिया कितने दिनों से देख रही है। लेकिन उस विनाश के प्रतिकार में जॉन को 'प्रथम मानवीय टार्च' बनना पड़ेगा, यह किसीको कल्पना भी नहीं थी। और, अब तो स्तब्ध और असहाय मानवता यह भी देख रही है कि जो टार्च जॉन छोड़ गया वह जलता जा रहा है।

वर्षों पहले चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपिता जॉन मैजरिक की हत्या के बाद किसी भी घटना ने देश के लोक-हृदय में इतना मंथन नहीं पैदा किया था जितना जॉन पालाच की इस आत्माहुति ने किया है। उसकी मृत्यु के बाद चेकोस्लोवाकिया वही नहीं रह गया है जो पहले था। पालाच आत्मोत्सर्ग का प्रतीक बन गया है। उसकी शहादत राष्ट्र की चेतना को कुरेद रही है। उसे बार-बार याद दिला रही है कि जिस तरह १४१५ में जॉन हुस अपने सुधारवादी धार्मिक विचारों के लिए विरोधियों द्वारा जलाया गया था, उसी तरह २५४ वर्ष बाद उसी देश में एक युवक जॉन पालाच ने अपने देश के सम्मान और दमन के प्रतिकार में अपने-आप को जला डाला। वास्तव में चेकोस्लोवाकिया का इतिहास शहादत की एक लम्बी कहानी है। कम-से-कम पिछले पचास वर्षों में तो वह नाजी और साम्यवादी दमन की अखण्ड यातना से गुजरा है, और आज भी गुजर रहा है। जॉन पालाच और उसके साथियों की आहुति देशवासियों को इस नये इतिहास की नये सिरे से याद दिला रही है। क्या विश्वविद्यालयों के बुद्धिवादी, क्या विद्यार्थी, और क्या कारखानों के श्रमिक, सब इस गहरे मंथन में साझीदार हो गये हैं। उस दिन पालाच की शव-यात्रा में लाखों की संख्या में जनता के साथ विश्वविद्यालयों के अनेक डीन और रेक्टर अपनी विशेष टोपी और चोगे पहनकर शरीक हुए थे। उसके बाद पालाच की अपनी मातृ-संस्था चार्ल्स विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने घोषणा की कि 'अगर यह स्थिति जारी रहती है तो हम सब इस बेबसी और बेचैनी में शरीक होंगे।' इतना ही नहीं, उसी जगह श्रमिकों ने यहाँ तक कह डाला कि : 'हम वह समाजवाद चाहते हैं जिसकी शक्ल में इंसानियत हो।...तुम्हारी माँगें हमारी माँगें हैं।' और, माँगें भी क्या हैं? समाजवादी चेकोस्लोवाकिया की समाजवादी रूस से इतनी ही माँग है : 'हमारी छाती पर से उतर जाओ।' अगर दूसरों की छाती पर चढ़कर ही समाजवाद को कायम रखना हो तो हिटलर के नाजीवाद और रूस के साम्यवाद में अन्तर क्या है?

जॉन पालाच ने देश के लिए अपनी जान दी लेकिन ऐसे लोग होंगे जो उसकी और उसके साथियों की कुर्बानी को बहस का विषय बनायेंगे। कोई कहेगा यह आत्म-हत्या है, कोई कहेगा यह भी एक प्रकार की हिंसा है, तो कोई यह भी कहेगा कि इस तरह जान देना निराशा और मानसिक रोग का लक्षण है। ये बहसें हमेशा हुई हैं, और होती रहेंगी, लेकिन वीर आत्माओं को भी जब जो करना होगा वे करती रहेंगी। सत्ताधारियों ने मनुष्य की विकल आत्मा की पुकार सुनने-समझने में कभी भी जल्दी नहीं की है। मनुष्य जिस वक्त अपनी आत्मा के लिए अन्तिम आहुति देने को तैयार होता है, उस वक्त उसके व्यक्तित्व को दुनिया की सामान्य तराजू में नहीं तोला जा सकता। शहीद की तराजू दूसरी होती है; उसके बाट-बटखरे दूसरे होते हैं। जिस दुनिया ने राजनीति, धर्म, कानून, व्यापार, और विज्ञान, सबको दमन और शोषण का साधन बनाने के एक-से-एक नमूने पेश किये हैं उसके पास वह तराजू कहाँ है जो शहीद की शहादत को तोल सके? वह तराजू उसके पास है जो मनुष्य को मनुष्यता के नाते मानता हो, जानता हो।

पूंजीवाद हो या समाजवाद, या दूसरा कोई भी वाद हो, स्थिति यह है कि अभी भी मानव को मानवता के लिए बहुत-कुछ करना है। एक बड़ी लड़ाई सामने है। उस लड़ाई की क्या व्यूह-रचना होगी, यह हर देश अपनी परिस्थिति में सोचेगा। एक ढंग था दक्षिण वियतनाम में बौद्ध साधुओं का जिन्होंने मिले-जुले देशी-विदेशी दमन के प्रतिकार में अपने को अग्नि की भेंट किया। उस रास्ते को जॉन पालाच ने चेकोस्लोवाकिया में पकड़ा। अगर हिंसा का हिंसा से मुकाबिला संभव न हो, या मानव-हित में हिंसक प्रतिकार उचित न हो, और दूसरी ओर अन्याय को स्वीकार भी न करना हो, तो प्रतिकार और विद्रोह का दूसरा क्या रास्ता रह जाता है? कुछ भी हो, चेकोस्लोवाकिया ही नहीं, हर देश के करोड़ों-करोड़ लोग जॉन पालाच के इन अन्तिम शब्दों का समर्थन कर रहे हैं : 'मेरे काम ने मेरा उद्देश्य पूरा कर दिया। अच्छा होगा कि मेरी राह दूसरा कोई न चले। बस, जो जीवित हैं वे मुक्ति का अभियान जारी रखें।'

मशाल जल चुका है। अगर दुनिया के जालिम इसी पर उतारू हैं कि मनुष्य मरकर ही अपनी मनुष्यता को जिलाये रखे तो पालाच की तरह मरनेवालों की कमी नहीं होगी। एक ओर शहीद अपनी जानों की होली खेलेंगे और दूसरी ओर इतिहास प्रतीक्षा करेगा उस दिन की जब मनुष्यता के लिए शहीद के खून की जरूरत नहीं रह जायेगी।

पालाच चेकोस्लोवाकिया के दिल में आग पैदा कर गया है। राष्ट्रपति स्वोबोदा के शब्दों में : 'दावानल के लिए बस एक चिनगारी की जरूरत बाकी है।' आशा है चिनगारी की जरूरत नहीं पड़ेगी, लेकिन अगर पड़ गयी तो पालाच के चेकोस्लोवाकिया में चिनगारी की कमी नहीं पड़ेगी।●

मृत्यु-तिथि की शताब्दी पर

मिर्ज़ा ग़ालिब

मिर्ज़ा ग़ालिब का नाम कौन नहीं जानता ! वह उर्दू साहित्य के सबसे बड़े, विख्यात, और लोकप्रिय गजल-गो शायर माने जाते हैं। उनके शेर हर शायरीपसन्द शख्स की जबान पर न आयें, यह हो नहीं सकता। ग़ालिब में रहस्यवाद और मानवतावाद; इन दोनों का अद्भुत सम्मिश्रण था। उनका यह विश्वास था कि सबसे बड़ा दुर्भाग्य—जीवन की वास्तविक विपदा—व्यक्ति की अपनी चेतना है। मानव-जीवन और मानव-नियति के बारे में उनके विचार अत्यन्त स्पष्ट थे। उनकी मंशा जाहिर है :

> "ये फितना आदमी की खानावीरानी
> को क्या कम है !
> हुए तुम दोस्त जिसके, दुश्मन उसका
> आसमां क्यों हो ?"

उनके काव्य में अन्तर्दृष्टि की गहराई और अभिव्यक्ति की मोहकता है, जिससे वह शुष्क अन्वेषण और नीरस तर्क-विवाद से बहुत ऊपर उठ जाता है। वे कहते हैं :

> "वफा कैसी, कहाँ का इश्क,
> जब सर फोड़ना ठहरा,
> तो फिर ऐ संगदिल,
> तेरा ही संगे-आस्तां क्यों हो ?"

मिर्ज़ा ग़ालिब का जन्म २७ दिसम्बर १७९७ को आगरे में हुआ था। उनका पूरा नाम था असदुल्लाबेग खाँ। कविता करने लगे तो "असद" उपनाम रख लिया, जो बाद में बदलकर "ग़ालिब" हो गया। तेरह वर्ष की आयु में ही इनका विवाह नवाब इलाही बख्श की लड़की उमराव बेगम से हुआ। इसी सम्बन्ध के कारण वे १५-१६ वर्ष की आयु में आगरा छोड़कर दिल्ली आ गये और सारी जिन्दगी दिल्ली में ही बिता दी।

जीविका के लिए शाही दरबार से जुड़ना आवश्यक था, किन्तु लाख कोशिशों के बाद भी मिर्ज़ा ग़ालिब से यह सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका। क्योंकि यह वही समय था जब मुगल-शासन का ऐतिहासिक पतन हो रहा था। बहादुर शाह ने इन पर कृपा करके कुछ मासिक तनख्वाह बांध दी। लेकिन उतने से इनका गुजारा नहीं हो पाता था।

सन् १८५७ के गदर के साथ ही मुगलों के राज्य के अन्तिम अवशेष भी मिट गये। पेन्शन बन्द हो गयी। सिवाय हिन्दू मित्रों के किसी और का सहारा भी न रहा। दिन आर्थिक संकट में गुजरने लगे। ग़ालिब लिखते हैं : "इस नादारी (गरीबी) के जमाने में जिस कद्र कपड़ा, ओढ़ना और बिछौना घर में थे, सब बेच-बेचकर खा गया। गोया और लोग रोटी खाते थे, मैं कपड़ा खाता था।" इस तरह की भीषण गरीबी में जिये हुए ग़ालिब की जिन्दगी उन्हींके लिए बोझ बन गयी। सन् १८६५ के आसपास मौत की घड़ियाँ गिनते हुए लिखते हैं :

> "पहले आती थी हाले दिलपे हँसी,
> अब किसी बात पर नहीं आती।
> मौत का एक दिन मुअय्यन है,
> नींद क्यों रात भर नहीं आती ॥"

और, जब ७३ वर्ष की अवस्था में १५ फरवरी १८६९ को नींद आयी, तो ऐसी आयी कि फिर उठे नहीं ! उनका मज़ार दिल्ली में है, जहाँ प्रतिवर्ष १५ फरवरी को "ग़ालिब दिवस" मनाया जाता है।

कष्टमय जीवन की मुक्ति के बाद मिर्ज़ा ग़ालिब देश की दीवारों को तोड़कर दुनिया के हो गये। उनकी मौत ने ख्याति को सबके लिए चारों ओर बिखेर दिया। आज ग़ालिब-शताब्दी के अवसर पर दुनिया के कई देशों में बड़े जोरदार जश्न मनाये जा रहे हैं। दिल्ली ने तो ग़ालिब संस्थान की इमारत बनाने का इरादा किया है। यूनेस्को की मदद से "ग़ालिब अकादमी" स्थापित हो गयी है, इसका उद्घाटन २१ फरवरी को डा० जाकिर हुसेन करेंगे। ग़ालिब शताब्दी की शुरुआत १६ फरवरी से होगी। विज्ञान-भवन में १७ जनवरी को ग़ालिब के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन करने के लिए एक संगोष्ठी आयोजित है, जिसमें इंग्लैंड, अमेरिका, इटली, चेकोस्लोवाकिया, ईरान, अफगानिस्तान, रूस और पाकिस्तान के प्रतिनिधि भाग ले रहे हैं।

शताब्दी के अवसर पर मिर्ज़ा ग़ालिब की तुलना हेगल, ब्राउनिंग, सेनिट्सबरी, बर्गसन और शापनहावर से करते हुए यदि उनके काव्य का मुख्य लक्षण जीवन का गहरा दर्द, लाचार पीड़ा का हृदयवेधी संताप, असहनीय दुःख की शून्यता भरी बेचैनी, आकस्मिक दुर्भाग्य के क्रूर और अशमनीय आघात, पीड़ित चेतना का प्रतिबिम्ब माना जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

ग़ालिब के पास बालक का-सा हृदय और ऋषि की-सी प्रखर बुद्धि थी। उनको दिव्य दृष्टि और क्षमता असाधारण मात्रा में मिली थी। उनकी कविता महज शौक नहीं, आत्मज्ञान के लिए थी। हमें उनके स्वर में एक विश्वास और सच्ची लगन की छाप मिलती है। प्रत्युत वे विश्वकवि थे। उन्हींके शब्दों में : "शब्दों की ज्योति का सौन्दर्य उन्हींको नसीब होता है, जिनके हृदय जलते हैं।"

—क० द० अ०

श्रद्धांजलि

श्री ईश्वरलाल व्यास

जरात के जिन ३-४ कार्यकर्ताओं को बापू ने उड़ीसा में ग्रामसेवा के लिए भेजा था, उनमें से एक श्री ईश्वरलाल व्यास का ११ फरवरी '६९ को दोपहर में एक बजकर २० मिनट पर देहावसान हो गया ! आप करीब ४० साल से उड़ीसा में सेवा-कार्य कर रहे थे। बालासोर जिले के सोरो नामक स्थान में आपने आश्रम बनाया था। उत्कल नवजीवन मण्डल के आप प्रमुख कार्यकर्ता रहे। गांधी सेवा संघ के भी आप सदस्य थे। जब से भूदान का आन्दोलन शुरू हुआ, तब से ही आप इसमें अपनी पूरी क्षमता और निष्ठा के साथ लगे रहे। आपका अपना कोई निजी परिवार नहीं था, सारा उत्कल सर्वोदय-कार्यकर्ता समुदाय ही आपका स्नेह-परिवार था। आपके व्यापक स्नेह की याद और अटूट निष्ठा की प्रेरणा आपके जाने के बाद भी बल प्रदान करती रहेगी। दिवंगत आत्मा को हमारी विनम्र श्रद्धांजलि !

जन-शक्ति का उभरता स्वरूप

विनोबा

हमारे हाथ में कोई अधिकार तो है नहीं और फिर भी सारे (सरकारी) अधिकारी लोग काम में लग जाते हैं तो ठीक ही है। यह उनका काम ही है, बल्कि हमने तो बंगाल में कहा ही था—पंडितजी से मुलाकात होने के बाद—कि भाई, आप लोगों को अब सरकार का खाना है और बाबा का काम करना है। मैंने वहां के मिनिस्टरों से इस सम्बन्ध में कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि आप ठीक कह रहे हैं। 'भावना पैदा हो चुकी है, कानून बन जाता तो सारा मामला खतम', यह मुझे गाडगिल साहब ने सुनाया। वह बिहार में आये थे तो उन्होंने यह शब्द कहा कि हमारी सरकार को जरा भी 'इमैजिनेशन' (कल्पना-शक्ति) होती तो आपने जो वातावरण खड़ा कर दिया है जनता में, उसको आधार मानकर कानून बना देती तो एक 'कम्प्लीट रिवोल्यूशन' (पूर्ण क्रांति) हो सकता था। लेकिन सरकार ने नहीं किया और वह उससे होने का भी नहीं है। उसका कारण डा० राधाकृष्णन् ने वर्धा में बताया। वह वर्धा में किसी शिक्षा-संस्थान के काम से आये थे, लेकिन बीच में पवनार पड़ता है तो मुझसे मिलने के लिए आये। उन दिनों मैं बोलता नहीं था, लिखकर चर्चा हुई, २०–२५ मिनट वहां रहे। उसके बाद वर्धा में जाकर उन्होंने शिक्षा पर व्याख्यान दिये। पहले भूदान पर बोले कि इस काम में जो देरी हो रही है उसका एक कारण यह है कि जिनके हाथों में सरकार है, वही जमीन के मालिक हैं। लोगों ने दूसरे दिन मुझसे पूछा तो मैंने बताया कि उस सिलसिले में मुझसे कोई बात उनसे नहीं हुई थी। उनको लगा कि यही कहना चाहिए तो कहा। आखिर वह फिलासफर तो हैं ही! इस वास्ते अगर सरकारी अधिकारी आते हैं और इस काम में लग जाते हैं, तो ठीक ही है।

सरकारी अधिकारी और ग्रामदान

यह सरकारी अधिकारी कौन हैं? अभी तो यह जो सारा गया जिला ग्रामदान में आया, उसमें ६० प्रतिशत शिक्षा-अधिकारियों और शिक्षकों का हाथ है। जितने शिक्षक थे उस जिले में, वे सब-के-सब इस काम में लग गये। मैंने शिक्षकों को समझाया कि आप लोगों को ३० साल तक सेवा करने का अधिकार है और 'पोलिटिकल' पार्टियों को तो केवल ५ साल। इस तरह से वे छः-छः बार आयेंगी तबतक आप लोग सेवा करते रहेंगे। इस वास्ते आप लोगों के हाथों में जनता का भला-बुरा करने का जितना अधिकार है उतना उन लोगों के पास नहीं है। आप तो ३० साल तक शिक्षा का काम करेंगे। तो ज्ञान-शस्त्र के सामने कोई शस्त्र नहीं टिकता। ३० साल के बाद आप जायेंगे तो कौन शिक्षक होंगे? जिनको आपने पढ़ाया है, जो आपके विद्यार्थी रहे हैं।

अभी बिहारशरीफ में ४-५ दिन पहले शिविर हुआ। वहां के सब मुख्य-मुख्य शिक्षक, करीब चार-पांच सौ इकट्ठे हुए। वहां का शिक्षा-अधिकारी मुसलमान था। मैंने कहा कि यह आन्दोलन आप लोगों को उठा लेना चाहिए। वे लोग लग गये। फिर डी. एम. भी आये थे। वे भी अपने सरकारी अधिकारियों को इसमें लगायेंगे। उन्होंने कहा कि २० जनवरी तक यह होना चाहिए। ऐसी कोशिश करेंगे, ऐसा आश्वासन देकर चले गये। अगर मेरी ऐसी सत्ता चलने लगे, तो हमारा क्या बिगड़ता है? अभी तो मैंने होम गार्ड्स के लोगों से कहा कि आप लोगों को लड़ाई के समय ही बुलाया जाता है, बाकी समय में काम नहीं रहता है. तो गांव-गांव में जाकर काम करें। उन्होंने कहा कि हम यह काम करेंगे। तो ये शिक्षक, होम गार्डस, और ग्राम-पंचायत के मुखिया अनुकूल हुए हैं तो यह सारे जन ही हैं, इनके अलावा हस्ताक्षर करनेवाले लोग हैं। अब उसमें सरकारी लोग आते हैं तो अच्छा ही है। मैंने कहा कि इस काम में भाग लेते हैं और इस काम को पूरा करते हैं तो आपका 'ला एण्ड आर्डर' का काम खतम होता है, तो वह पैसा बाबा को दान करना चाहिए। वह इससे इनकार नहीं करते हैं और कहते हैं कि बात सही है। वह अगर दबाव डालते हैं तो दूसरी बात है।

उड़ीसा में १० हजार सेवक लगेंगे। लेकिन उनके पास पैसा तो है नहीं। ये १० हजार सेवक कहां से आयेंगे? वही जो ग्राम-पंचायत में काम करते होंगे, शिक्षक वगैरह होंगे। इसलिए जन-शक्ति का स्रोत इससे सूख जायेगा, ऐसी बात नहीं है। अब जनता को ठीक से नहीं समझाया जाय तो यह मूर्खता मानी जायेगी। सारा मामला 'बोगस' होगा, हम पर सारा उलटेगा।

रचनात्मक कार्यकर्ताओं का सहयोग

कहते हैं कि आज जो रचनात्मक कार्यकर्ता हैं उनका पूरा सहयोग मिलता नहीं है। वे तो दया के पात्र हैं। उनका बोझ उनके सिर पर है। करोड़ों रुपयों की खादी पड़ी है, जो बिकती नहीं है। सस्ती करते हैं, फिर भी बिकती नहीं है। अधिक सस्ती करते हैं, तो फिर कैसे करेंगे? मैंने यह पाया कि ४० हजार लोगों की जिम्मेवारी जिस संस्था पर है, उस संस्था का ध्यान खादी-बिक्री पर रहता है। उस हालत में उस संस्थावालों की क्या दशा होगी? इतना ही है कि ये हमारे लोग हैं, यह बाबा के लिए 'क्रेडिट' है। बाबा को उनके ऊपर दया आती है। उनके पीछे उनका परिवार है। इतना कठिन कार्य वह कर रहे हैं। मैं तो बिलकुल ही उचित कार्य मानता हूं। ग्रामदान का भी काम वे करते हैं। उनके पास खादी का काम भी है और ग्रामदान का भी। इसलिए समझना चाहिए कि वे जितना करते हैं, उतना बहुत है। वे बिहार में काफी करते हैं। हमने उनसे कहा कि आप नहीं करते हैं तो हमारे मन में आपके लिए दया है। हम दूसरे लोगों को काम में लगायेंगे; फिर आपका भार हलका होगा, तब आप काम करेंगे। इसलिए जो रचनात्मक कार्यकर्ता रचनात्मक काम में लगे हैं, उनसे मदद ही क्या मिलती है? इसका उच्चारण भी नहीं होना चाहिए। जितनी मदद वे देते हैं उतनी लेनी चाहिए। खादीवालों ने इस काम में काफी खर्च किया है।

गांधी-शताब्दी

इस काम में गांधी-शताब्दी के उत्साह का उपयोग मत कीजिए। वह बड़ा खतरनाक है। जो ९९ में नहीं था, १०० में है, और १०१ में समाप्त हो जायेगा, वह एक ज्वार है, जो उतर जायेगा। उन्होंने दस-पांच कार्यक्रम माने हैं, उनमें यह भी एक माने हैं। उनसे जितनी मदद मिले वह ले लें, लेकिन उनका आधार नहीं लेना चाहिए।

प्रदेशदान के मामले में आंध्र क्यों पिछड़ रहा है? तमिलनाडु और उड़ीसा के बीच में वह है, तो वह भी प्रांतदान की बात क्यों नहीं करता है ?

सीमा-प्रदेश

सीमा-प्रदेशों में अपना विस्तार बढ़ाने का रास्ता कम्युनिस्टों का है। उत्तर बिहार में, उत्तर काशी में, कश्मीर का विभाग और राजस्थान के जैसलमेर में, जहां-जहां बार्डर्स हैं वहां-वहां कम्युनिस्ट लोग काम कर रहे हैं। जहां असंतोष है, वहां वे उस असंतोष का उपयोग करते हैं। इसलिए आपकी 'स्ट्रेटजी' यह होनी चाहिए कि जहां सुलभ प्रदेश है वहां काम करें। मैं तो यहां तक विचार करता हूं कि अनेक प्रदेशों में लगे हुए लोग अगर इकट्ठा हो जायें और किसी एक प्रदेश को पूरा कर दें, फिर अपने प्रांत में जायें तो वह विजयी होकर जायेंगे, बजाय इसके कि हर प्रांत में अपना-अपना करते रहें। मिलिटरी की 'स्ट्रेटजी' हो। एक जगह दो-चार सौ कार्यकर्ता आ जायें।

बाबा का प्रभाव

प्रश्न : बाबा, आप जाते हैं तो हरएक को कर्त्तव्य का बोध हो जाता है, लेकिन आमतौर पर यह स्थिति नहीं रहती। इसका क्या विकल्प है ?

विनोबा : इस पर पहले भी चर्चा हुई है। इस विषय में ज्यादा चिंता की जरूरत नहीं है, क्योंकि यह परिस्थिति बिहार के अलावा दूसरे प्रांत में नहीं होनेवाली है। बिहार में इसलिए कि यहां मेरी दो-तीन पदयात्राएं हो चुकी हैं। कुल मिलाकर बाबा ने यहां ६ साल बिताये हैं। इतना समय दूसरे प्रांत में नहीं बिताया है। उस सबका परिणाम यह है। जनता में जो श्रद्धा की भावना थी, उससे सरकारी सेवक भी अछूते नहीं रह सकते थे। और जब एक शिक्षक जाता है तो लोग समझते हैं कि बाबा ने भेजा है, इसलिए आया है। वह बाबा के काम को समझाता है। इसलिए लोगों के मन में भ्रम होने की गुञ्जाइश नहीं है। यह नहीं होता है कि यह सरकारी कार्यक्रम है, बल्कि वह जानते हैं कि बाबा यहां आया हुआ है इसलिए ये बोल रहे हैं। आखिर वे जो कुछ करते हैं, वह हमारे प्रभाव के अन्तर्गत है, उससे भिन्न भी नहीं और उसके विरोधी भी नहीं। इसलिए खास चिंता का विषय नहीं है, और जैसा कि मैंने कहा कि दूसरे प्रांतों में यह नहीं होनेवाला है। आप इस विषय में चर्चा कर सकते हैं। प्रश्न उठते हैं यह ठीक है।

प्रश्न : जन-शक्ति पैदा करने का काम उससे खंडित तो नहीं होगा ? क्योंकि बिहार में जो कुछ होगा उसका असर दूसरे प्रदेशों में भी होगा।

विनोबा : बाबा एक प्रांत में है। हरएक प्रांत में तो नहीं है। दूसरे प्रांत में भी चले तो चले।

आध्यात्मिक स्रोत

मैंने दो बातें आप लोगों के सामने पहले भी कही हैं। एक तो यह कि आंदोलन भौतिक नहीं है। इसका असर भौतिक क्षेत्र पर पड़ेगा, सामाजिक और आर्थिक पर भी पड़ेगा। लेकिन यह आंदोलन मूलतः आध्यात्मिक है। इसलिए जितनी हमारी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ेगी, उतना ही उसका प्रचार जनता में होगा। केवल स्थूल प्रचार पर हमारा निर्भर नहीं है। बहुत फर्क पड़ता है। यहां एक स्तूप खड़ा किया जाता है। इसलिए नहीं कि यहां का हवा-पानी अच्छा है; बल्कि इसलिए कि गौतम बुद्ध का असर ढाई हजार साल के बाद शुरू हो गया है। बीच में दबा हुआ था। तो आध्यात्मिक असर हवा में काम करता है। जितना हमारा आत्मिक संशोधन होगा, उतना ही उसका असर होगा। अगर हम शून्य हो जायें तो कम-से-कम कर्म में ज्यादा-से-ज्यादा असर होगा। कर्म करना पड़ता है, कार्य करने पड़ते हैं। वह इसलिए कि कुछ कमी है।

साहित्य-प्रचार

जो एक बात कम्युनिस्टों के ध्यान में थी, वह यह कि विचारों का साहित्य जितना फैले उतना ही परिणाम होगा। सतत विचार पहुंचते रहने चाहिए। विचारों का गहन अध्ययन होना चाहिए। यह गांधीजी के जमाने में भी कम रहा। उनका सम्बन्ध ज्यादा शहरों से था। लेकिन हमें तो हर गांव से हस्ताक्षर लेना पड़ता है, जो बहुत कठिन है। उस हालत में हर गांव में आपका साहित्य पहुंचे, इसकी योजना आज तक हम कर नहीं पाये। सर्व सेवा संघ के लोग बैठते हैं, चर्चा कर लेते हैं और शायद समझते हैं कि यह अपनी औकात के बाहर की बात है। लेकिन ऐसा वास्तव में है नहीं। ७० हजार ग्रामदान प्राप्त किया है तो ७० हजार तो ग्राहक हो जायें ! लेकिन इनकी जो खपत है, उसमें मुश्किल से दो-ढाई हजार गांवों में इनकी पत्रिका जाती होगी। ऐसी हालत में अब हम मशीनरी खड़ा करना चाहते हैं कि शिक्षकों के द्वारा विचार का प्रचार हो। पत्रिका हर गांव में पहुंचे। शिक्षक इस काम में लगें। उनके द्वारा आपका पर्चा पहुंचे, इसके लिए वे तैयार हैं। ऐसा अगर आप इन्तजाम करते हैं, तो स्थूल रूपेण एक मशीनरी आपके हाथ में आ जायेगी।

चुनाव की चुनौती

राममूर्ति ने एक अच्छा आर्टिकल लिखा है—'इस वक्त सन् १९६९ में अच्छे सेवक को चुनो और सन् १९७२ में अपने सेवकों को चुनो।" अच्छे सेवकों के लिए इस वक्त हम प्रचार करेंगे; उस वक्त अपने ही सेवक खड़े हो जायें, यह उन्होंने अच्छी तरह से रखा है। अब आपके पास तीन साल का अवकाश है। उतने अवकाश में आपको गांव-गांव में पहुंचना है। यह आपके लिए जितना आसान है उतना और किसीके लिए नहीं। एक श्रद्धा है वातावरण में।

[राजगीर, पटना में दि० ७-१-'६९ को हुई ग्रामदान-अभियान समिति की बैठक की चर्चा से।]

अहिंसा : दुहरी विजय की शक्ति

डा० मार्टिन लूथर किंग

जब किसी समाज में संकट पनपता है तो सदैव उसके फलस्वरूप उत्पन्न समस्या को हल करने और उसे भड़कानेवाली शक्तियों से छुटकारा पाने का प्रयत्न किया जाता है। निश्चय ही जो उत्पीड़ित होते रहते हैं वे संकट का सामना करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। और, उत्पीड़ित व्यक्ति अपने शोषण-उत्पीड़न का सामना तीन उपायों से कर सकते हैं।

एक उपाय तो सन्तोष-सहमति का है; ऐसे बहुत-से लोग हैं, जो समझते हैं कि उनके उत्पीड़न से निबटने का एकमात्र उपाय यह मान बैठना है कि उनके भाग्य में ही उत्पीड़न बदा है। ऐसे लोग हैं, जो आत्म-समर्पण कर देते हैं और जैसी भी स्थितियाँ हों उनके अनुसार चलने की उनकी आदत हो जाती है। वे महसूस करते हैं कि पुराने तौर-तरीके व ढर्रे को बदलकर नया ढांचा बनाने की अग्नि-परीक्षा में से गुजरने के बजाय इन्हीं परिस्थितियों में रहना बेहतर है।

तो यह सन्तुष्टि-सहमति का उपाय है—परन्तु यह सही मार्ग नहीं। कभी यह सुगम उपाय हो सकता है, किन्तु यह कायरता का मार्ग है, क्योंकि जो व्यक्ति खराब ढर्रे से ताल-मेल बिठा लेता है वह उस समय उस खराब ढर्रे में हिस्सेदार हो जाता है और उसे उस अनुचित ढर्रे को स्थायित्व प्रदान करने की कुछ जिम्मेदारी अपने ऊपर भी ओढ़नी चाहिए।

उत्पीड़ित व्यक्तियों द्वारा अपने उत्पीड़न का प्रतिकार करने का एक दूसरा उपाय है; और वह है हिंसा और क्षयकारी घृणा को अपनाकर विद्रोह करने का।

हिंसा : परिवर्तन के बजाय सर्वनाश

निस्सन्देह, अब हम इस उपाय के बारे में भी जान चुके हैं। हम हिंसा को समझते हैं और मैं यहाँ यह कहने नहीं आया कि हिंसा से कभी काम नहीं बना। इतिहास को पढ़नेवाला जल्दी ही यह जान जायगा कि राष्ट्रों ने बहुधा अपनी स्वाधीनता हिंसा के जरिये प्राप्त की है। हिंसा से बहुधा क्षणिक सफलताएं प्राप्त हुई हैं, किन्तु साथ ही मैं यह भी कहूँगा कि हिंसा से अस्थायी सफलताएं भले ही प्राप्त हुई हों, पर उससे स्थायी शान्ति कभी नहीं हो सकती और अन्त में उससे बहुत सारी सामाजिक समस्याएँ पैदा होती हैं। हिंसा अन्तिम रूप में, जातीय न्याय के संघर्ष में अव्यावहारिक होने के साथ-साथ अनैतिक भी है। यह अनेक कारणों से अव्यावहारिक है, और मेरी राय में एक सबसे बढ़िया कारण यह है कि हमारे बहुत-से विरोधी यह चाहेंगे कि हम हिंसात्मक क्रान्ति प्रारम्भ कर दें, वे यह युक्ति देकर कि वे उपद्रव भड़का रहे हैं; बहुत-से निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करने के लिए एक बहाने के तौर पर इसका सहारा लेंगे।

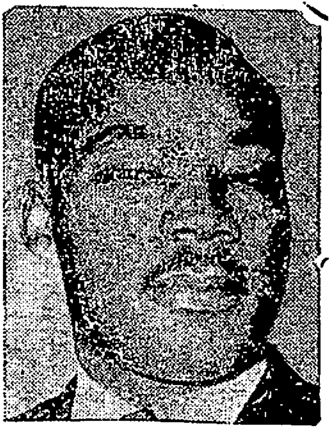

डा० मार्टिन लूथर किंग :
अहिंसक शक्ति के प्रतीक

और, हिंसा अव्यावहारिक भी है, क्योंकि किसीकी आँख निकालने के बदले दूसरे की आँख निकालने के उपाय का अन्त यही है कि सभी अन्धे हो जायेंगे। यह तरीका गलत है। यह तरीका अनैतिक है। यह अनैतिक इसलिए है, क्योंकि इससे नीचे उतरते-उतरते अन्त में सभी का विनाश हो जायेगा। यह गलत इसलिए है, क्योंकि उससे विरोधी को परिवर्तित करने के बजाय उसका सफाया कर देने का यत्न किया जाता है।

एक तीसरा उपाय भी है और वह है अहिंसात्मक प्रतिरोध का। मेरे विचार में यही एक ऐसा उपाय है, जिससे हमें इस विक्षुब्ध अन्तरिम काल में मार्गनिर्देशन प्राप्त करना चाहिए। हम पुरानी व्यवस्था की जगह नयी व्यवस्था अपना रहे हैं। अनिवार्यतः हमें प्रसव-पीड़ाओं—नये युग के जन्म के साथ अनिवार्य रूप से होनेवाले तनावों—को झेलना होगा।

किन्तु मेरा विश्वास है कि अहिंसा एक ऐसा उपाय है, जिससे नये युग के आदर्शों, लक्ष्यों और सिद्धान्तों को प्राप्त किया जा सकता है।

अहिंसा : साधन और साध्य में समस्वरता

अब हम एक क्षण के लिए इस विचार-धारा और उसके आधारभूत आशय पर दृष्टि-पात करते हैं; क्योंकि हम अहिंसा के विषय में बहुत सारी बातें कहते और सुनते हैं; इसलिए हम बहुधा यह नहीं समझ पाते कि इस उपाय की भी एक अन्तरावेष्टित विचारधारा है। सबसे पहले मैं यह कहूँगा कि अहिंसा की विचारधारा यह मानकर चलती है कि हम जिन साधनों का उपयोग करें, वे हमारे अभीष्ट लक्ष्यों की भाँति ही निर्दोष व शुद्ध होने चाहिए। साधनों और साध्यों में समस्वरता होनी चाहिए। साधन और साध्य अविभाज्य हैं। साधन निर्माणाधीन आदर्श का ही द्योतक है, इतिहास में अन्ततोगत्वा विनाशकारी साधनों से रचनात्मक उद्देश्यों की उपलब्धि नहीं हो सकती। अनैतिक साधनों या उपायों से नैतिक लक्ष्यों की सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए अहिंसा का आधार यह है कि साधनों और लक्ष्यों में समन्वय होना चाहिए। अहिंसा नैतिक साधनों के द्वारा सत्य आदर्शों व लक्ष्यों की अनवरत प्राप्ति का नाम है।

अहिंसा के विषय में मैं जो दूसरी बात कहना चाहता हूँ वह यह है : इसमें यह माना जाता है कि मनुष्य का लक्ष्य अपने विरोधी को क्षति पहुँचाना कदापि नहीं होना चाहिए। भारतीय दर्शन में इसे 'अहिंसा' की संज्ञा दी गयी है।

अहिंसात्मक संयम और अहिंसा के दर्शन का यही केन्द्रबिन्दु है। उसके दो पहलू हैं :

पहला; निस्सन्देह यह है कि आप बाह्य शारीरिक हिंसा से विलग रहेंगे। अहिंसात्मक प्रदर्शन में भाग लेने के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति से हम यह कहते हैं कि आपको शारीरिक हिंसा का प्रतिशोध नहीं लेना चाहिए। यदि आप पर प्रहार हो तो आपको उलटकर प्रहार नहीं करना चाहिए, आपको ऊंचा उठकर प्रतिशोध लिये बिना प्रहारों को अपने ऊपर झेलने में समर्थ होना चाहिए। और इस प्रकार प्रहार न करने का तात्पर्य होगा कि आपने बाह्य शारीरिक हिंसा में उलझना स्वीकार किया। किन्तु इसका यह भी अर्थ है कि आप लगातार उस स्थिति की ओर बढ़ रहे हैं, जब आप अपने शत्रु से घृणा भी नहीं करेंगे। आप लगातार उस स्थिति में पहुँच रहे हैं; जब आप अपने शत्रु से प्रेम करेंगे।

इस कथन के सम्बन्ध में बहुत-से लोग गड़बड़ा जाते हैं। वे समय-समय पर मुझसे पूछते हैं : "जब आप कहते हैं कि 'अपने प्रतिपक्षी से प्रेम करो तो संसार में उसका क्या तात्पर्य होता है ?' एक दिन मेरे भाषण के बाद किसीने पूछा : "मैं नीति के रूप में अहिंसा का अनुसरण कर सकता हूं, और मेरी राय में आपका यह मत सही है कि यह सर्वोत्तम नीति और सर्वोत्तम प्रक्रिया है। किन्तु जब आप इस 'प्रेम-वस्तु' की बात कहते हैं तो मैं आपका साथ नहीं दे सकता।"

प्रेम : अहिंसा का केन्द्रस्थल

पर यह 'प्रेम वस्तु' ही अहिंसा का केन्द्रस्थल है। क्षति न पहुँचाने की सर्वोच्च अभिव्यक्ति प्रेम है, और मेरा विचार है कि इस रूप में बहुत-से लोग प्रेम को ठीक-ठीक नहीं समझते। वे समझते हैं कि जब हम 'प्रेम' की बात करते हैं तो हम भावनात्मक स्नेह-भाव की चर्चा करते हैं, किन्तु सबसे पहले मैं ही यह कहूँगा कि यह बेहूदा है; उत्पीड़ित लोगों से यह कहना निरर्थक है कि वे अपने उत्पीड़कों के साथ स्नेहात्मक भावना से प्रेम करें। यह बहुत कठिन है और प्रायः असम्भव है।

इसलिए जब मैं यह बतलाने का यत्न करता हूँ कि 'प्रेम-वस्तु' से मेरा क्या आशय है तो ग्रीक भाषा का शब्द 'अगेप' ग्रहण करता हूँ।

'अगेप' कल्पनात्मक या रोमांचक प्रणय मात्र नहीं है। यह मित्रता से बढ़कर है। इसका आशय सब मनुष्यों को समझना, उनके प्रति रचनात्मक, मुक्तिदायक सद्भावना है। यह सतत प्रवहमान प्रेम है, जिसमें कोई प्रत्याशा नहीं की जाती। धर्मशास्त्री कहेंगे कि यह परमात्मा का प्रेम है, जो मनुष्य की अन्तरात्मा में काम करता है। जब कोई प्रेम के इस स्तर तक पहुँच जाता है तो वह मनुष्य मात्र से प्रेम करता है, उसे इसलिए प्रेम नहीं करता कि वह उसे और उसके तौर-तरीकों को पसन्द करता है। वह प्रत्येक मनुष्य को प्रेम करता है, क्योंकि परमात्मा उससे प्रेम करता है। वह इस स्तर तक पहुँच जाता है कि वह व्यक्ति के दुष्कृत्यों से घृणा करते हुए भी दुष्कर्म करनेवाले व्यक्ति से प्रेम करे।

यह सदैव एक लक्ष्य है, और जहाँ ऐसा कहना संभव हो वहाँ संघर्ष की एक प्रणाली रखना अच्छा है, क्योंकि अब हम यह जानने लगे हैं कि घृणा खतरनाक है। जिससे घृणा की जाती है उसकी तरह ही यह घृणाकारी के लिए भी हानिकर है।

दुहरी प्रक्रिया : स्वयं कष्ट-सहन और प्रतिपक्षी की अंतरात्मा को अपील

हिंसा और अहिंसा इस पर सहमत है कि कष्ट-यातना एक प्रबल सामाजिक शक्ति हो सकती है। किन्तु अन्तर यह है कि हिंसा कहती है कि हिंसा तब प्रबल सामाजिक शक्ति बनती है जब आप दूसरे पर उसका प्रहार करते हैं, किन्तु अहिंसा कहती है कि कष्ट तब प्रबल सामाजिक शक्ति होता है जब अपने ऊपर कष्ट-यातना और हिंसा के प्रहार करने देते हैं। उसमें यह मान्यता रहती है कि अन्यायपूर्ण कष्ट सदैव मुक्तिकारक होता है।

और इसलिए अहिंसा का अभ्यासी अपने विरोधी से कहेगा : "हम अपनी कष्ट-सहन की क्षमता से कष्ट-यातना पहुँचाने की आपकी क्षमता का मुकाबला करेंगे। हम आपकी शारीरिक शक्ति का आत्मिक शक्ति से मुकाबला करेंगे। आप हमारे साथ चाहे जो करें, हम आपसे प्रेम करते रहेंगे। हम पूर्ण सद्भाव रखते हुए भी आपके अन्यायपूर्ण कानूनों का पालन नहीं कर सकते, इसलिए आप हमें जेल में डाल दें और भले ही उसमें कितनी भी मुसीबतें हों, हम जेल जायेंगे और आपसे प्रेम भी करते रहेंगे। हम अब भी आप से प्रेम करेंगे। किन्तु आप यह यकीन रखिए कि हम अपनी कष्ट-सहन की क्षमता से आपको थका देंगे, और एक दिन आयेगा कि हम अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर लेंगे। इस प्रकार हम आपके हृदय व अन्तरात्मा से अपील करेंगे कि इस प्रक्रिया में हम आपको जीत लेंगे और हमारी विजय दुहरी विजय होगी।"

और अहिंसा का यही सबसे गहरा तात्पर्य है, और यही ऐसी चीज है जो विरोधी को हताश कर देती है। वह उसके नैतिक बचावों को नंगा कर देती है, वह उसकी हिम्मत तोड़ देती है और इसके साथ-साथ वह उसकी अन्तरात्मा पर असर करती है। वह समझ नहीं पाता कि उससे कैसे निबटे।

यदि वह आपको जेल में नहीं डालता तो बहुत बढ़िया है। किन्तु यदि वह आपको जेल में बन्द कर देता है तो आप उसे लज्जाजनक काली कोठरी से आजाद और मानवी प्रतिष्ठा के पुनीत स्थल में परिणत कर दें। यदि वह आपकी हत्या का यत्न करे तो आप ऐसा आन्तरिक विश्वास पैदा करें कि कुछ ऐसी बहुमूल्य, ऐसी प्रिय और ऐसी शाश्वत सत्य चीजें होती हैं कि उनके लिए प्राणोत्सर्ग करना भी कोई बड़ी बात नहीं। और यदि मनुष्य ने कोई ऐसी चीज नहीं खोजी जिसके लिए वह प्राण दे सके तो उसे जीवित रहना ही नहीं चाहिए। •

हौवर्ड विश्वविद्यालय में ६ नवम्बर सन् १९६३ को 'गांधी स्मारक भाषण' के रूप में दिये गये भाषण से।

भूदान तहरीक
उर्दू भाषा में अहिंसक क्रांति की
संदेशवाहक पाक्षिक पत्रिका
वार्षिक शुल्क : ४ रुपये
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, वाराणसी–१

आँखों देखा अहवाल :

मुरैना की अराजक स्थिति : संकेत की दिशा ?

लाठीचार्ज, अश्रुगैस, फाइरिंग और कर्फ्यू←पुलिस की ओर से

हड़ताल, जुलूस और कचहरी, बैंक व सरकारी दफ्तरों पर ताला तथा चलती रेलों को रोक देना→जनता की ओर से

जनवरी, '६९ : गणतंत्र दिवस !

सारे नगर में सरकारी इमारतों पर कोई राष्ट्रीय ध्वज फहरानेवाला नहीं। सारे शहर में कर्फ्यू और जिधर देखो उधर ही एस० ए० एफ० पुलिस के सिपाही वर्दी पहने, लोहे के टोप लगाये हुए ! नगर में चारों ओर आतंक ही आतंक ! सन् १९४७ के बाद जन्मे तरुण नागरिकों को तबाही पर आमादा देखकर बड़े बूढ़े कह उठे—एक वे हैं जिन्हें तस्वीर बना आती हैं, और एक हम हैं कि लिये अपनी सूरत को भी बिगाड़।

बात यह हुई कि :

शहर के बीच में से दिनांक ६ जनवरी '६९ की संध्या को ७ बजे एक व्यापारी बन्धु का ८ वर्षीय बालक मुरारी डाकुओं द्वारा अपहृत कर लिया गया। नगरवासियों को चिन्ता हो उठी कि अभी तक तो गाँवों से ही पकड़ ले जाते थे, अब तो ये शहर से भी सरेआम ले जाने लगे ! कांग्रेस २८ जनवरी '६९ से प्रदेशीय स्तर पर सत्याग्रह करने वाली ही थी और उस सत्याग्रह का एक केन्द्र मुरैना भी था, अतः सबसे पहले कांग्रेस दल ने एक आम सभा में संविद-शासन की बुराई करते हुए 'गद्दी छोड़ दो' का नारा दिया।

कांग्रेस को इस अवसर का श्रेय मिलते देखकर अन्य राजनैतिक दलों ने भी एक संयुक्त सभा का आयोजन किया, जिसमें कांग्रेस भी शामिल रही। हर राजनैतिक दल की ओर से एक-एक व्यक्ति लेकर सामूहिक अनशन आरम्भ हुआ। जनता की माँग के मुताबिक शहर-कोतवाल तथा सुपरिण्टेण्डेण्ट-पुलिस, दोनों का मुरैना से दूरस्थ स्थानों को स्थानान्तरण हो गया। अनशन का यह क्रम व्यक्ति बदल-बदलकर सतत चलता रहा। इस बीच अपहृत बालक पुलिस द्वारा ले आया गया, पर उस सम्बन्ध में न कोई डाकू-पुलिस मुठभेड़ हुई और न कोई मुखबिर या डाकू-दल का सदस्य ही पकड़ा गया। इस पर जनता में नारा लगा कि निश्चित ही यह डाकू-पुलिस गठबन्धन है। यह भी अफवाह रही कि उस व्यापारी के पल्लेदार ने ही उस बालक का अपहरण कराया था और उस व्यापारी का भी डाकुओं से लेन-देन है।

जनता की मालिकी

आवाज बुलन्द हुई कि पहले जो लड़के गाँवों से गये हैं, वे भी वापिस आने चाहिए। पुलिस गुनाहों से पल रही है, इसलिए वह डाकू-समस्यारूपी जाल को काटना नहीं चाहती, क्योंकि वह खुद उस पर बैठी है। माँग हुई कि एक न्यायिक जाँच होनी चाहिए। इस सबसे एक तथ्य उभरकर प्रकट हुआ कि मुरैना नगर की जनता अपने को मालिक समझने लगी और पुलिस तथा सरकारी कर्मचारियों को नौकर कहकर सम्बोधित कर उठी। लेकिन यह भी सही है कि मालिक ने अपने में मालिकी के गुण अपनाने शुरू नहीं किये, अर्थात् सार्वजनिक सम्पत्ति जो जनता रूपी मालिक की ही कही जायगी, उसे वह खुद अपने हाथों नष्ट करने लगी। यह भी एक विडम्बना या विरोधाभास कहा जायगा !

दस दिन बाद, १९ जनवरी '६९ को एक सर्वदलीय सार्वजनिक सभा आयोजित हुई, जिसमें नगर के आसपास की जनता ने भी हजारों की संख्या में भाग लिया। मुरैना के इतिहास में यह ऐसी पहली सभा थी। अभी तक अनशनकारियों को तथा सभाओं में पुलिस तथा प्रशासन को गालियाँ देनेवालों को पुलिस ने गिरफ्तार नहीं किया था, अतः २० जनवरी को पूर्ण हड़ताल रखकर २१ जनवरी से जिले के मुख्य न्यायालय पर जनता ने ताला डाल दिया। अन्य सरकारी इमारतें बैंक आदि पर भी ताले डाल दिये। नगर का सारा प्रशासनिक कार्य ठप्प हो गया।

इस उफनते जोश में होश खोकर 'मालिकों' ने अपने 'नौकरों' को कुत्ते कहकर पथराव शुरू कर दिया।

प्रशासन के उठते कदम

जिलाधीश श्री आई० एस० राव ने अभी तक बहुत धीरज से काम लिया था। गिरफ्तारियाँ न करके आन्दोलन के शान्त होने की राह देखी, पर कचहरी पर कितने दिनों तक ताला लगा रह सकता है ? २३ जनवरी की रात को कचहरी का ताला ही नहीं, बल्कि पूरा फाटक ही पुलिस ने अलग करके जन-सुरक्षा समिति को गिरफ्तार कर २४ जनवरी '६९ को प्रातः से ७ दिन के लिए धारा १४४ लगा दी।

प्रशासन की गलतियों पर गलतियाँ

(१) गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों को डाकबंगले में रखा गया। उनको टेलीफोन का खूब उपयोग करने दिया गया, जिससे उन्होंने नगर के अनेक नागरिकों को डाकबंगले पर आमंत्रित किया और मुरैना नगर के हजारों व्यक्ति डाकबंगले पर गिरफ्तार व्यक्तियों को छुड़ाने पहुँच गये। वहाँ पड़ी हुई पत्थर की गिट्टी का उपयोग हुआ और देखते-देखते डाकबंगला क्षत-विक्षत हो गया। एक पुलिस-गाड़ी में आग लगा दी गयी। फलस्वरूप लाठीचार्ज और अन्त में फाइरिंग शुरू हो गयी। एक लड़के की बाँह से गोली आरपार हो गयी, जिसे सिविल अस्पताल में रखा गया। नगर में खबर फैल गयी कि इस बच्चे के अलावा एक और दूसरा बच्चा मारा गया, पर यह बात बाद में भ्रामक सिद्ध हुई।

(२) छात्रों से मामूली छेड़छाड़ की घटना में पुलिस शासकीय जूनियर कालेज में घुस गयी और वहाँ कई अध्यापकों व प्राचार्य

को डण्डों से पीटा। इस पिटाई से छात्रवर्ग भी प्रतिशोध की अग्नि में जल उठा।

(३) असामाजिक तत्त्व इस नेतृत्व-विहीन आन्दोलन में घुस आये, उनको तत्काल गिरफ्तार न करने से उन्हें बढ़ावा मिला। 'तीन दिन से कचहरी पर ताला लगा है। जनता प्रशासन को ठप्प होता देखकर हँस रही है।' इस स्थिति ने आगे की परिस्थिति को नितनूतन बद से बदतर बनाया और असामाजिक तत्त्वों में रेल तक रोक देने का दुस्साहस पैदा किया। शुरू-शुरू में एक जन-संघी विधायक गिरफ्तार हुए थे। उसके बाद कोई जनसंघी नेता व कार्यकर्ता गिरफ्तार नहीं हुए और कांग्रेसी तथा संसोपा के नेताओं को चुन-चुनकर घर से बुलाकर बुरी तरह पीटा गया और गिरफ्तार करके दूरस्थ स्थानों को भेजा गया। 'चूंकि जनसंघ दल के पुलिस-मंत्री हैं, इसलिए कांग्रेसियों की हालत बिगाड़ करके आगे के लिए उनका पुलिस-रेकार्ड खराब करने का यह षड्यंत्र है।' ऐसा समझदार लोग भी कहने लगे।

जनता की ओर से गलती

(१) जनसुरक्षा-समिति के संचालकों के जेल जाने के बाद नये संचालक नहीं बनाये गये। बिनानायक की फौज-सी जनता इधर-उधर भगदड़ में पड़ गयी। सब लीडर-ही-लीडर हो गये, 'फालोअर' कोई नहीं रहा। कोई किसीकी सुननेवाला नहीं रहा!

(२) बाजे-गाजे के साथ सैकड़ों लोगों ने पुलिस-मंत्री श्री सकलेचा की अर्थी चौराहे पर जलायी, जब कि जनसुरक्षा-समिति में पहले ही तय हो गया था कि चूंकि इस आन्दोलन में सभी राजनैतिक दल सम्मिलित हैं, इसलिए किसी दलविशेष के नेता को अप-मानित व लांछित नहीं किया जायेगा।

(३) छात्रों तथा जनता के बीच के असामाजिक तत्त्वों ने मिलकर रेलवे की दोनों ओर के केबिन बन्द करके ताले लगा दिये। रेल-यातायात ठप्प हो गया। एक फर्स्ट क्लास के डिब्बे की सीट से रेक्सीन फाड़कर आग लगा दी, जो स्टेशन मास्टर के तुरन्त देख लेने से बुझा दी गयी, नहीं तो पूरी गाड़ी में आग लग जाती। कलक्टर तथा नगर के कतिपय शान्तिप्रिय व्यक्तियों ने बहुत सम-झाया, पर लोग हटे नहीं; अन्त में लाठीचार्ज और अश्रुगैस बड़े पैमाने पर छोड़ी गयी।

शान्ति के नागरिक-प्रयास

पूरे नगर में इनेगिने कुछ व्यक्तियों ने चेष्टा की कि जनता शांतिपूर्ण वैधानिक साधनों से अपना सत्याग्रह चलाये, पर ये ओस की बूदें जलते तवे पर छन्न होकर रह गयीं। इतना जरूर हुआ कि लोगों ने महसूस किया कि शांति की ताकत भी खड़ी होनी चाहिए, ताकि पहले तो ऐसे अवसर आने ही न पायें और यदि आ जायें तो उस समय केवल चार नहीं, बल्कि अनेक लोग सीना तानकर इस आग को बुझाने में अपनी भक्ति और शक्ति से जुट जायँ। जब सही बात कहने को कुछ खड़े हो जाते हैं तो उनको भी धीरे-धीरे समर्थन मिलने लगता है। इन ४ व्यक्तियों को १४ अपने जैसे और मिल गये।

२७ जनवरी को शांति का प्रयास करने-वाले व्यक्तियों ने मुहल्ले-मुहल्ले दूध, दवा व अनिवार्य आवश्यकता की वस्तुएँ पहुँचाने की व्यवस्था की और इस सेवा के माध्यम से घर के बुजुर्गों को समझाया भी कि बच्चों द्वारा मुहल्ले और गली में पथराव न होने दें, जिसमें सफलता मिली और इस दिन ढाई घंटे के लिए कर्फ्यू उठा लिया गया और इस बीच नगर में पूर्ण शान्ति रही और लोगों ने बाजार से सामान खूब खरीदा, लेकिन बेचारे वे क्या खरीदते जो दिन भर मेहनत-मजदूरी से कमाकर शाम को खरीदा करते थे, उन्हें तो मेहनत करने को ही नहीं मिली और न कोई कमाई ही हुई, दिन भर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे।

२८ जनवरी को प्रातःकाल शांति-समिति के सदस्य नगरपालिका-भवन में कल-क्टर और पुलिस-सुपरिण्टेंडेंट से मिले और कर्फ्यू-पास लेकर सारे नगर में शान्ति-स्थाप-नार्थ घूमे और दोपहर बाद २ से ४ बजे तक फिर इन दोनों अधिकारियों से मिले और ४ से १० बजे ६ घंटे के लिए कर्फ्यू हटवाया। इस बीच कोई उपद्रवकारी घटना नहीं हुई।

२९ जनवरी को फिर ९ बजे मिले और दोपहर बाद २ बजे से १० बजे तक ८ घंटे के लिए कर्फ्यू हटवाया। इस सबसे अनुभव यह आया कि जनता शान्ति तो चाहती है, पर पुलिस की पिटाई से उनके कलेजों में बदले की आग अभी भी धधक रही है!

लड़ाई जारी है

२६ जनवरी गणतंत्र-दिवस के प्रातः से लगा हुआ कर्फ्यू बापू-निर्वाण दिवस ३० जनवरी के प्रातः तक बराबर लगा रहा। नगर में चारों ओर अशान्ति भी फैली रही। कहा नहीं जा सकता, इसका हश्र क्या होगा? लड़ाई अभी जारी है। स्कूल-कालेज अनिश्चित काल के लिए बन्द हैं। २९ जनवरी को कर्फ्यू खुलने पर भी दूकानदारों ने अपनी दूकानें नहीं खोलीं। उनका कहना रहा कि मुरैना के नाम पर ग्वालियर में हड़ताल हो गयी। दूसरे हमारे लिए मर रहे हैं। हमारे नेताओं को बुरी तरह अभी भी पीटा जा रहा है। हम दूकानें नहीं खोलेंगे।

पहले दो दिन खोला गया तो सारा नगर अपनी दैनंदिन की जरूरतें लेने उमड़ पड़ा, पर वह भी डरते-डरते। अधिकांश लोग भागते-भागते बाजार जा-आ रहे थे। स्कूल से छुट्टी के बाद छात्रों की भीड़ का जो दृश्य होता है, वैसा ही देखा गया। कुछ कह रहे थे, पिंजड़ों में से पंछी निकलकर अब पान-तम्बाकू और सिगरेट की फिक्र में हैं। यह भी सुना गया कि कर्फ्यू के दौरान नाग-रिकों को बुरी तरह पीटा गया। घर के बाहर खड़ा देखा तो फिर घर के भीतर से भी घसीटकर बाहर लाकर पीटा, ताकि सारे मुहल्ले पर आतंक छा जाय। लोग अपने-अपने घरों में घोसलों की तरह अपने छोटे-छोटे बच्चों को दाना चुगाते रहे और बाहर निक-लने से रोकते रहे। पर तीसरे दिन की स्थिति और ही थी। लोग खुली दूकानें बन्द करा रहे थे।

यह चिनगारी पूरे जिले और समीपवर्ती जिलों में पहुँच गयी, जिसके फलस्वरूप अम्बाह में गोली चली और जौरा, सबलगढ़, सभी तहसीलों के प्रमुख स्थानों पर अशान्ति फैल गयी। ग्वालियर, भिण्ड, शिवपुरी भी अशान्त हुए और डर हुआ कि यह कहीं पूरे मध्यप्रदेश में न फैल जाय! —गुरुशरण

बिहार में ग्रामदान-कानून के अन्तर्गत पुष्टि-कार्य के प्रयास

पुष्टि-कार्य की अनुकूलता-प्रतिकूलता के बारे में जानकारी एवं चिन्तन के लिए प्रस्तुत कुछ तथ्य

(१) क—गांवों की संख्या, जिनके संकल्प-पत्र पुष्टि-पदाधिकारियों के कार्यालय में दाखिल किये गये— १,२३०

• ४०० गांवों के कागज सितम्बर '६८ या उसके बाद दाखिल हुए।

• इन गांवों के करीब ७५ हजार परिवारों को नोटिस दी गयी, जिसकी प्रति गांव के सुगोचर स्थान, पंचायत, कार्यालय एवं ब्लाक ग्राफिस में भी दी गयी। प्रत्येक नोटिस के साथ-साथ संकल्प-पत्र को प्रतिलिपि लगानी पड़ती है। प्रत्येक घोषक के लिए एक संचिका करनी पड़ती है।

ख—पुष्टि-पदाधिकारियों के द्वारा नोटिस किये गये गांवों की संख्या — १,०७३

ग—शेष गांव जिनकी नोटिस तैयार की जा रही है (समस्तीपुर क्षेत्र के)— १५७

(२) क—नोटिस किये गये १०७३ गांवों में से उन गांवों की संख्या, जिनके व्यक्तिगत घोषणा-पत्र पुष्ट हो गये— ९५३

ख—शेष गांव, जिनकी पुष्टि की कारंवाई अब तक नहीं हो पायी है— १०३

ग—गांवों की संख्या, जिनके सम्बन्ध में ग्रापत्ति ग्रायी— १७

(३) क—८३३ गांवों से ३३४ गांव भूमिहीनों के हैं। इनका ग्रामदान तभी होगा, जब किसी पड़ोसी गांव के साथ जुड़ें या कानून में संशोधन हो। शेष गांवों की संख्या, जिनके सम्बन्ध में अब यह जांच करनी है कि उस गांव की ७५ प्रतिशत जनसंख्या तथा ५१ प्रतिशत जमीन पूरी हुई है या नहीं-- ४९९

ख—गांवों की संख्या, जिनका सर्वेक्षण अब तक पूरा नहीं हुआ— २९८

ग—गांवों की संख्या, जिनका सर्वेक्षण हो गया— २०१

(४) क—सर्वेक्षित २०१ गांवों में से गांवों की संख्या, जिनकी शर्तें पूरी नहीं हुईं— १२६

ख—पुष्टि-पदाधिकारियों द्वारा गजट में घोषित ग्रामदान-संख्या— ७५

उपर्युक्त ग्रांकड़ों से न तो हम यह अंदाज लगा सकते हैं कि पुष्टि में कितनी शक्ति लगानी होगी और न यह अंदाज होगा कि गांवों में किस अनुपात में ग्रामदान की शर्तें पूरी हो रही हैं।

पुष्टि की अपेक्षित शक्ति का अंदाज

(क) अभी हमारे सात पुष्टि-पदाधिकारी काम कर रहे हैं। इनमें से सदर-दरभंगा के पुष्टि-पदाधिकारी के यहां वर्ष भर में सिर्फ ६२ गांवों के कागज दाखिल हुए, जब कि समस्तीपुर के पुष्टि-पदाधिकारी के यहां ४६७ गांवों के कागज दाखिल हैं। इनमें से करीब साढ़े तीन सौ गांवों के कागज ११ सितंबर, '६८ को दाखिल हुए थे।

(ख) पुष्टि-पदाधिकारियों को समान और सतत एक-सा काम नहीं मिलता। यह भी सम्भव नहीं कि इनकी तुरन्त बदली कर दें, क्योंकि इनके क्षेत्र का बदल गजट के द्वारा करना होगा। कार्य सन्तुलित करने के लिए सहायकों की संख्या में अन्तर करना पड़ता है। उदाहरणार्थ—दरभंगा के पुष्टि-पदाधिकारी को एक तथा समस्तीपुर के पुष्टि-पदाधिकारी को चार सहायक दिये गये, फिर भी निर्णय लेना तो पुष्टि-पदाधिकारी को होगा। सभी फाइलों पर उन्हींके हस्ताक्षर होंगे।

(ग) पूर्णिया पूर्व में अप्रैल, '६८ से काम प्रारम्भ हुआ एवं अक्तूबर, '६८ तक २०० गांवों का अन्तिम निर्णय हो गया। दरभंगा-सदर में वर्षभर में ६२ गांवों का निर्णय हुआ। इस प्रकार वर्तमान काम से अपेक्षित काम का सही मूल्यांकन नहीं हो सकेगा।

(घ) दाखिल कागजों में जो काम शेष हैं, उनमें से अधिकांश समस्तीपुर के हैं। इनके लिए विशेष व्यवस्था कर ली गयी है।

(ङ) मार्च तक करीब एक हजार गांवों के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय किया जा सकेगा।

• अभी की निष्पत्ति से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि किस अनुपात में गांव शर्तें पूरी नहीं कर रहे हैं, या किस अनुपात में भूमिहीनों के गांव हैं।

(क) अभी कार्यकर्ता सुविधा कि दृष्टि से पहले भूमिहीन या अल्प भूमिवाले गांवों का कागज पूरा करते हैं। इस कारण दाखिल कागज में भूमिहीनों के गांवों का अनुपात अधिक है।

(ख) टोले-टोले का अलग-अलग ग्रामदान हुआ (पूर्णिया, दरभंगा आदि में)। जिलादान के बाद अब पूरा राजस्व गांव ग्रामदान में आ गया। मार्गदर्शन के अभाव में सुलभता के लिए कार्यकर्ता पुष्टि भी टुकड़े में करते हैं। नतीजा यह होता है कि कोई टोला जनसंख्या के अभाव में और कोई भूमि के अभाव में अपूर्ण रह जाता है।

(ग) अभी की पुष्टि में कार्यकर्ताओं को गांव से विवरण नहीं मिलता। वे सरकारी कर्मचारी से विवरण पाते हैं। इसमें जमीन छूट जाती है। कई मालिकों के नाम जमीन आज तक सरकारी कागज में दर्ज नहीं हो सकी है। उनके बाप-दादों का नाम चलता है। गांव के सहयोग के अभाव में यह पता चलना मुश्किल होता है। इससे जमीन का अनुपात गिरता है। कहीं-कहीं तो यह भी होता है कि कार्यकर्ता विवरण पाने के कष्ट से बचने के लिए अल्प भूमिवान (१०-१५ कट्ठा) को लिख देते हैं कि इनके पास सिर्फ बास की जमीन है, चास की नहीं। जिससे जोत की जमीन का अनुपात कम हो जाता है।

उपाय

(१) एक अंचल में सरकारी अधिकारी, ग्रामदान-पुष्टि करने एवं विचार समझानेवाले→

कस्तूरबाग्राम में
अ० भा० शिविर-सम्मेलन

कस्तूरबा की स्मृति में संस्थापित ट्रस्ट के द्वारा कस्तूरबाग्राम (इन्दौर) में ५ फरवरी से १२ फरवरी १९६९ तक दूसरा अखिल भारतीय शिविर-सम्मेलन हुआ, जिसमें सारे देश से आयी हुई लगभग ५५० बहनों ने भाग लिया। सम्मेलन के पूर्व ५ फरवरी से ८ फरवरी तक अ० भा० कस्तूरबा स्मारक ट्रस्ट द्वारा बा-बापू जन्म-शताब्दी के सिलसिले में "अ० भा० कस्तूरबा-शिविर" हुआ। इसी अवसर पर मध्य प्रदेश गांधी-शताब्दी समिति की महिला व शिशु उपसमिति ने भी एक महिला-शिविर आयोजित किया, जिसमें शताब्दी-वर्ष में कस्तूरबा-सम्मेलन के निर्णय एवं उद्देश्यों के व्यापक प्रचार की योजना पर विचार हुआ।

अ० भा० कस्तूरबा-शिविर का उद्घाटन आचार्य दादा धर्माधिकारी ने किया और अध्यक्षता की सुश्री अमलप्रभा दास ने। उद्घाटन-भाषण में सामाजिक क्रान्ति की चर्चा करते हुए दादा ने कहा कि आज दुनिया में जो क्रान्तियाँ हो रही हैं, वे सांस्कृतिक क्रान्तियाँ हैं। लेकिन विनोबाजी ने इस देश की परिस्थितियों के सन्दर्भ में क्रान्ति की एक ऐसी प्रक्रिया की खोज की है, जिससे सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्रान्ति साथ-साथ हो सकती है।

शिविर के दूसरे दिन श्रीमती सरोजनी महिषी ने तथा तीसरे दिन मध्य प्रदेश के भूतपूर्व विकास-आयुक्त श्री प्रताप सिंह बापना ने शिविरार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि गाँवों की पिछड़ी हुई महिलाओं में विचार की जागृति एवं आत्मस्वातंत्र्य की चेतना का विकास बहुत जरूरी हो गया है। इसके लिए महिलाओं को चाहिए कि घर के काम से बचे समय का उपयोग समाज के लिए करें। समाज की वर्तमान स्थिति का आत्मविवेचन करते हुए वक्ताओं ने लोक-शिक्षण पर विशेष बल दिया। विकास-आयुक्त श्री बापना ने अपने विगत जीवन के अनुभवों के आधार पर कहा कि सरकार सिर्फ ईंट और गारा भले जुटा दे, उससे कोई ठोस काम होने की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। विकास-खण्ड द्वारा गाँवों में किये जानेवाले कामों की असफलता का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि गाँववालों को हमने इतने झूठे सपने दिखाये कि वे हम पर आश्रित हो गये। आपने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वेतनभोगी लोग गाँवों में निष्ठा नहीं पैदा कर रहे हैं। गाँववालों में स्थानीय अभिक्रम, नेतृत्व, संकल्प और विश्वास यदि पैदा हो जाये तो गाँव की समस्याएँ वे खुद हल कर लेंगे।

केन्द्रीय समाज-कल्याण बोर्ड की अध्यक्षा श्रीमती अली जहीर ने कहा कि आजादी के बाद सामाजिक प्रगति बहुत धीमी हुई है, जो कि एक बड़े देश को सजाने-सँवारने के लिए कम है। आपने धीमी प्रगति का एक कारण शिक्षा भी बताया। महिलाओं के पिछड़ेपन के लिए उन्हींको जिम्मेदार ठहराते हुए कहा—

खुदा ने आज तक उस
मुल्क की सूरत नहीं बदली,
न हो जिसको खयाल जबतक
खुद अपने को बदलने का।

९ फरवरी को कस्तूरबा-सम्मेलन का उद्घाटन राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन करनेवाले थे, किन्तु अस्वस्थता के कारण वे नहीं आ सके और तब उद्घाटन किया डा० चिंतामणि देशमुख ने।

→योग्य कार्यकर्ता तथा भूदान कमेटी की ओर से पुष्टि करनेवाले अधिकारी आवश्यक सहायकों समेत लगें, तो हमें पता चलेगा कि गाँव को तैयार करने के लिए क्या करना होगा एवं कितनी शक्ति लगेगी, सरकारी अधिकारी कितने मददगार हो सकते हैं, कमेटी को कितने कार्यकर्ता लगाने होंगे तथा खर्च क्या आयेगा।

(२) एक बार जे० पी० ने कौवाकोल का सुझाव दिया था, उसी प्रकार सात प्रखंड लिये जा सकते हैं। इन प्रखण्डों में हमारे वरिष्ठ कार्यकर्ता स्वयं प्रत्यक्ष पुष्टि-कार्य में लगें।

(३) छिट-पुट पुष्टि-कार्य से न तो प्रगति होगी और न हम सही काम कर सकेंगे।

—निर्मलचन्द्र
मंत्री,
बिहार-भूदान-यज्ञ कमेटी,
कदमकुआँ, पटना–३

अखबार की कतरन :

सर्वदलीय चुनाव-मंच

"श्री जयप्रकाश नारायण ने चुनाव-प्रचार के लिए सर्वदलीय मंच का उदाहरण प्रस्तुत करके निश्चय ही भारत की राजनीति में एक उल्लेखनीय कार्य किया है। जलसों, जुलूसों और सभाओं द्वारा चुनावों में अंधाधुन्ध खर्चा होता है। इसमें धन ही नहीं, बहुमूल्य समय भी नष्ट होता है और उपयोगिता भी उनकी नगण्य ही होती है। आज का चतुर मतदाता न इससे प्रभावित होता है और न उनके द्वारा अपने विचार ही बनाता है। अधिकांश प्रचार-सामग्री रद्दी के योग्य ही होती है। यही बात भाषणों के सम्बन्ध में भी है।

"दलों का एकपक्षीय प्रचार केवल एकांगी ही नहीं, वरन् कटुतापूर्ण भी होता है। अपने मंच पर प्रायः लोग दूसरों को कोसते हैं। इससे कटुता उत्पन्न होती है। यही कटुता आगे चलकर चुनाव-झगड़ों का कारण बन जाती है। इसके विपरीत अगर एक ही मंच पर सभी दलों के नेता अपने-अपने विचार रखें तो जनता को उन्हें तोलने और उम्मीदवारों की योग्यता को सामने परखने का सही अवसर मिल जाता है। इतना ही नहीं, पीठ पीछे गाली देने का जो सिद्धान्त है, उसका यहाँ अवसर नहीं रहता। तब लोग तर्क ही देते हैं, गाली नहीं।

"ऐसे सर्वदलीय चुनाव-मंच की कल्पना बहुत दिनों से विचारवान लोगों के दिमाग में चक्कर काट रही थी। जयप्रकाशजी ने बिहार में उसे मूर्त रूप देकर अपनी सर्वोदयी सक्रियता का सही परिचय दिया है। इसके लिए वे निस्सन्देह बधाई के पात्र हैं। उन्हें ऐसे ही महत्त्वपूर्ण और आवश्यक रचनात्मक कार्यों की सलाह देकर देश की जनता का मार्ग-दर्शन करना चाहिए। इनमें उनकी पैठ भी है और सफलता भी असंदिग्ध है।"

—'हिन्दुस्तान' दैनिक के १९ फरवरी '६९
के सम्पादकीय नोट से।

संयुक्त मंच की शानदार सफलताएँ

फरवरी १९६९ में बिहार, बंगाल, उत्तरप्रदेश एवं पंजाब में होनेवाले मध्यावधि चुनाव में सर्वोदय-कार्यकर्ता क्या करें यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही नहीं, आवश्यक भी था। इसलिए सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति की ५-६ अक्तूबर १९६८ को सोखोदेवरा में हुई बैठक में मध्यावधि चुनाव के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया। विचार-विमर्श के बाद यह निर्णय लिया गया कि इस मध्यावधि चुनाव में लोकनीति की पूरी योजना जनता के सामने प्रस्तुत नहीं की जा सकती। लोकनीति का आधार 'दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व' है, किन्तु जबतक राज्यदान पूरा नहीं हो जाता तथा ग्रामदानी गाँवों में ग्रामसभाएँ गठित नहीं हो जातीं तबतक दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व का प्रयोग संभव नहीं। परन्तु बैठक में यह महसूस किया गया कि मध्यावधि चुनाव के अवसर पर हमें लोकनीति की दिशा में ले जानेवाले विचार तो प्रस्तुत करने ही चाहिए। अतः इस चुनाव में लोक-शिक्षण की दृष्टि से मतदाताओं का ध्यान दलों की ओर से हटाकर उम्मीदवार की अच्छाई की ओर ले जाना चाहिए। उम्मीदवार की अच्छाई आँकना कठिन है, फिर भी कुछ कसौटियाँ निश्चित की गयीं।

देवघर में ३० अक्तूबर १९६८ को बिहार सर्वोदय-संघ की बैठक हुई, जिसमें सर्व सेवा संघ के प्रस्ताव पर बड़ी ही दिलचस्पी के साथ चर्चा हुई तथा आम राय से यह तय किया गया कि सर्व सेवा संघ के प्रस्ताव का कार्यान्वयन पूरी मुस्तैदी से किया जाय। बैठक में एक मतदाता-शिक्षण समिति का भी गठन किया गया। समिति ने इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए जिला सर्वोदय-मंडलों को सक्रिय बनाने का प्रयास किया। समिति ने यह भी महसूस किया कि सर्वोदय-कार्यकर्ताओं के अलावा अन्य नागरिकों को भी इस विचार और कार्यक्रम में शामिल करना चाहिए। इस दृष्टि से श्री जयप्रकाशनारायण की अपील पर बिहार के नागरिकों की एक बैठक गत ८ दिसम्बर को पटना में श्री रत्नेश्वरीनन्दन सिंह की अध्यक्षता में हुई, जिसमें सर्व सेवा संघ के प्रस्ताव से मिलता-जुलता ही एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इसमें कहा गया कि दल, जाति एवं सम्प्रदाय के विचार से ऊपर उठकर उम्मीदवार की अच्छाई का ख्याल करके सबसे अच्छे उम्मीदवार को वोट दिया जाना चाहिए। मतदाताओं के शिक्षण के लिए और स्वीकृत प्रस्ताव के कार्यान्वयन के लिए बिहार मतदाता-सलाहकार समिति का गठन किया गया, जिसकी अध्यक्षता पटना हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री नागेश्वर प्रसाद एडवोकेट ने खुशीपूर्वक स्वीकार की।

समिति के तत्वावधान में बिहार के सभी प्रमुख राजनैतिक पक्षों के प्रतिनिधियों की एक बैठक श्री जयप्रकाश नारायण की उपस्थिति में २३ दिसम्बर को आचार-संहिता स्वीकृत करने के लिए हुई, जिसमें आमराय से एक सप्तसूत्री आचार-संहिता मान्य की गयी तथा उसका पालन ठीक से हो, इसकी देखभाल के लिए प्रान्तीय, जिला एवं सब-डिवीजन स्तर पर निगरानी-समितियाँ गठित करने का तय किया गया। समिति ने सभी जिलों में आमतौर पर पक्षरहित नागरिकों एवं खास तौर पर सर्वोदय-कार्यकर्ताओं की सहायता से पर्चे, फोल्डर्स, पोस्टर्स तथा सार्वजनिक सभाओं एवं गोष्ठियों के माध्यम से मतदाता-शिक्षण का काम प्रारंभ किया।

जिलादानी जिलों के प्रतिनिधियों की १८ दिसम्बर की बैठक में यह निर्णय लिया गया कि चुनाव तक सभी कार्यकर्ता सर्व सेवा संघ के प्रस्ताव को कार्यान्वित करने में लगेंगे। इस निर्णय के अनुसार मुजफ्फरपुर, सहरसा तथा पूर्णिया में सघन रूप से तथा अन्य जिलादानी जिलों में साधारण तौर पर कार्यक्रम को सफल बनाने में कार्यकर्ता लग गये। आचार्य राममूर्ति का अधिकांश समय बिहार के इस कार्यक्रम में मिला।

ऐसा निर्णय किया गया कि कम-से-कम सभी जिलों के मुख्य नगरों में अवश्य, और यदि सम्भव हो सका तो हर निर्वाचन-क्षेत्र में सम्मिलित मंच का आयोजन किया जाय। जहाँ कहीं भी इसका आयोजन हुआ, उसे बड़ी ही ख्याति मिली। मुजफ्फरपुर—१६, पटना—१, छपरा—५, दरभंगा—७, सहरसा—६, मुंगेर—३, पूर्णिया—३, आरा—१, गया—१, रांची—१, भागलपुर—१, संथाल परगना—१, और धनबाद—१—अबतक प्राप्त सूचनानुसार ४७ स्थानों में सफलतापूर्वक कार्यक्रम आयोजित किये गये। ऐसी सभाओं का निर्वाचन-क्षेत्रों में अच्छा असर पड़ा। आपस की कटुता में कमी आयी है तथा तनाव घटे हैं।

नागरिकों को भविष्य के चुनाव के लिए एक अच्छा संकेत मिला है। इस ढंग से कम खर्च में चुनाव लड़े जा सकते हैं, ऐसा विश्वास जमता जा रहा है। इसलिए मतदाता एवं नेता, दोनों पक्षों ने इसका स्वागत किया है। कहीं-कहीं दलविशेष के उम्मीदवार मंच पर आने से कतराये भी रहे।—कैलाशप्रसाद शर्मा

इलाहाबाद में भी

विभिन्न पक्षों के नेताओं की एक सम्मिलित बैठक १९ जनवरी को उत्तरप्रदेश शांति-सेना समिति के तत्वावधान में इलाहाबाद में हुई। इसकी अध्यक्षता श्री शंकरदयालु श्रीवास्तव, सम्पादक 'भारत' ने की। इस बैठक में सर्वसम्मति से एक आचार-संहिता स्वीकृत की गयी, जिसमें विभिन्न पक्षों में रहते हुए भी पारस्परिक सौहार्द्र और सद्भावना के साथ काम करने पर जोर डाला गया। श्री सुरेशराम भाई के सुझाव पर सर्वसम्मति से चार सदस्यीय पर्यवेक्षक दल का गठन हुआ। —सत्यप्रकाश

शिक्षण की निःशुल्क व्यवस्था

कस्तूरबा विद्यालय पसना, पो० पसना, जिला इलाहाबाद में क्रम से अप्रैल व मई '६९ से, ८वीं तथा ५वीं कक्षा उत्तीर्ण, १८ से ३० वर्ष तक की प्रौढ़ बहनों को प्रवेश देकर ३ वर्ष में हाईस्कूल और जूनियर हाईस्कूल तक की शिक्षा और भोजन की निःशुल्क व्यवस्था है। प्रार्थना-पत्र, प्रतिनिधि या मंत्री, कस्तूरबा ट्रस्ट, पो० पसना; वाया मेजा, जिला इलाहाबाद के पास पहुँचने की अन्तिम तिथि ५ मार्च '६९ है।

सम्पादक के नाम पत्र

'भूदान-यज्ञ' : नाम-चर्चा

महोदय,

१३ जनवरी के अंक में भाई जंगवहादुर का सुझाव कि 'भूदान-यज्ञ' का नाम बदलकर 'ग्रामदान महायज्ञ' अथवा कोई और अन्य नाम रख दिया जाय, पढ़ा। एक पाठक की हैसियत से मेरी सम्मति है कि 'भूदान-यज्ञ' एक व्यापक शब्द है ठीक वैसा ही, जैसा कि गीता का 'स्थितप्रज्ञ'। भूदान के अन्तर्गत 'विश्वदान' की भावना अन्तर्निहित है, क्योंकि 'भू' का अर्थ अखिल विश्व से है। मेरे विचार से इसकी जगह प्रत्येक नाम हास्यास्पद लगेगा। —अतर सिंह वर्मा

कुकथला, आगरा : १४–१–६९।

महोदय,

पिछले अंक में एक भाई ने 'भूदान-यज्ञ' का नाम 'ग्रामदान महायज्ञ' रखने का सुझाव दिया है। यह नाम सब तरह से लायक और उपयुक्त है। भूदान की परिणति हुई है ग्रामदान में, जो आखिरी और सर्वोत्तम निदान है समग्र उत्थान का।

मुंगेर, —नरेश कुमार चौहान

१४–१–'६९।

महोदय,

'भूदान-यज्ञ' पत्रिका का नाम परिवर्तन करने के बारे में पाठकों की सम्मति और सुझाव आमंत्रित किये हैं। मैं इस सुझाव से पूर्ण सहमत हूँ कि इस पत्रिका का नाम बदलकर ग्रामदान-महायज्ञ अथवा कोई माफिक नाम कर दिया जाय, जिससे लोकमानस पर इसका आकर्षण बढ़े। —नत्थू सिंह

आसफपुर, बदायूँ : १५–१–'६९।

महोदय,

'भूदान-यज्ञ' का नाम 'ग्रामदान महायज्ञ' रखा जाय, इसके समर्थन में मुझे इतना ही कहना है कि इस कार्य में शीघ्रता की जाय।

१६–१–'६९। —एन० द्विवेदी

भारत की ग्रामीण संस्कृति

गांधीजी का शिक्षा-जगत् को सन्देश

गांधीजी ने कहा था :

"हम ग्रामीण संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं। हमारे देश की विशालता, यहाँ की विराट् जनसंख्या एवं इसकी स्थिति और जलवायु के कारण ग्रामीण संस्कृति ही यहाँ सर्वथा उपयुक्त है। यद्यपि वर्तमान ग्राम-व्यवस्था की कमियाँ सर्वविदित हैं, परन्तु उनमें से एक भी ऐसी नहीं है जो नाइलाज हो। इस देश में ग्रामीण संस्कृति को उखाड़ फेंककर शहरी संस्कृति की स्थापना असम्भव ही है, जब तक कि किन्हीं प्रचण्ड साधनों द्वारा यहाँ की ३० करोड़ (आज तो ५० करोड़) जनसंख्या को ३० लाख या ३ करोड़ तक ले आने का कोई भयंकर विचार न करे। अतः ग्रामीण संस्कृति को ही इस देश में स्थायित्व देना होगा, ऐसा मानकर मैं इसके वर्तमान दोष दूर करने के उपाय बताता हूँ।

"इसका एकमात्र हल यही है कि इस देश के नवयुवक अपने को ग्रामीण जीवन में ढाल लें। यदि वे इस ओर बढ़ना चाहें तो अपने जीवन के पुनर्निर्माण हेतु उन्हें अवकाश के हर दिन का उपयोग अपने कालेज या स्कूल के समीपवर्ती गाँवों में करना चाहिए। जो युवक शिक्षण समाप्त कर चुके हों या जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हों उन्हें तो गाँवों में जाकर बस ही जाना चाहिए। वहाँ उन्हें सेवा, शोध एवं ज्ञान-प्राप्ति का अपार क्षेत्र मिलेगा। शिक्षकगण यदि छात्र-छात्राओं के अवकाश के दिनों में, उन पर साहित्य-अध्ययन का बोझ डालने के बजाय उनके लिए गाँवों में विचार-शिक्षण का कार्यक्रम निर्धारित करेंगे तो बहुत उपयुक्त होगा। अवकाश के दिनों का उपयोग पुस्तकें याद करने में नहीं, सृजनात्मक कामों में होना चाहिए।"

उपरोक्त गांधी-वाणी भारत की वर्तमान युवक-समस्या के समाधान हेतु एक महत्त्वपूर्ण संकेत है। लक्ष्यहीन शहरी जीवन के अभ्यस्त एवं किंकर्तव्यविमूढ़ नवयुवक को ग्रामीण जीवन में प्रवेश देने हेतु विनोबाजी ने आज ग्रामदान रूपी नया द्वार खोल दिया है।

क्या शिक्षा-जगत् इस ओर ध्यान देगा ?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी समिति), डुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैंरू,
जयपुर–३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

आन्दोलन के समाचार

श्री प्रभाकरजी द्वारा उपवास

शिवरामपल्ली, हैदराबाद से प्राप्त सूचनानुसार आन्ध्र प्रदेश सर्वोदय मण्डल के अध्यक्ष श्री प्रभाकरजी ने १ फरवरी '६९ से उपवास शुरू कर दिया है। इस आशय की सूचना देते हुए प्रभाकरजी ने प्रदेश के मुख्य मंत्री को लिखा है :

"हमने सन् १९१७ में ही गांधीजी को राजी कराया था कि लोकतंत्र के लिए भाषावार राज्य निर्माण करना आवश्यक है। उसीके आधार पर हमने भाषा-सिद्धांत के अनुसार प्रान्तीय कांग्रेस-संघों की स्थापना की। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद हमने भाषावार राज्यों की स्थापना के लिए प्रयत्न किया, नेताओं को इसके लिए राजी कराया। इसीके फलस्वरूप हमारे आन्ध्र प्रदेश का निर्माण हुआ। इस प्रकार दोनों अवसरों पर हम देश के पथप्रदर्शक बने।

"अपने आदर्श की प्राप्ति के बाद, हमें चाहिए था कि आपस में भाईचारे की भावना पैदा करें। पर इसके बदले में परस्पर-द्वेष को इतना बढ़ा लिया कि हम मानवता के स्तर से भी नीचे गिर गये। देश के सभी हितैषियों को इससे बड़ी व्यथा हुई। ऐसा होना सहज भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विद्वेष रूपी यह विष इसी प्रकार बढ़ता जाय तो इसके परिणाम काफी कटु निकलेंगे। इसके बारे में ज्यों-ज्यों मैं विचार करता हूं, त्यों-त्यों मेरी मनोव्यथा तीव्र होती जा रही है। इस व्यथा के कारण एक सप्ताह से प्रयत्न करने पर भी भोजन करने की इच्छा नहीं हुई। ईश्वर की प्रेरणा के रूप में स्वीकार कर कल से मैंने आहार लेना पूर्ण रूप से छोड़ दिया है।

आप इस प्रदेश के नेता हैं। इस बात की सूचना आपको देना अपना कर्तव्य मानकर यह पत्र आपको लिख रहा हूं।"

श्री प्रभाकरजी के इस पत्र का उत्तर देते हुए प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री के० ब्रह्मानन्द रेड्डी ने लिखा है।

"प्रदेश में अभी जो कुछ हुआ, उससे दुखी होना स्वाभाविक है। मुझे खुद भी अतीव वेदना हुई है, लेकिन परिस्थिति को सामान्य बनाने, वातावरण में एकता लाने के लिए अपनी भावना को नियंत्रण में रखना आवश्यक हो गया है। मैं आपसे उपवास समाप्त करने का निवेदन करता हूं, तथा प्रार्थना करता हूं कि विभिन्न तबकों में सद्भावना पैदा करने के काम में लगें।"

नशाबन्दी-दिवस

देश भर में राष्ट्रपिता म० गांधी के निर्वाण-दिन ३० जनवरी से श्राद्ध-दिवस १२ फरवरी तक मनाये गये सर्वोदय-पक्ष में अ० भारतीय नशाबन्दी परिषद के निर्णयानुसार २ फरवरी को 'नशाबन्दी दिवस' मनाया गया।

पटना में सर्वोदय-कार्यकर्ताओं ने कुछ होटलों एवं क्लबों में शराब-विरोधी प्रचारार्थ पिकेटिंग किया। सारण जिले के मांझी थानास्थित तीन स्थानों की दूकानों पर शांतिपूर्ण ढंग से दिनभर धरना दिया गया। पूर्णिया जिले में श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी सर्वोदय-पक्ष की पदयात्रा करते हुए 'नशाबन्दी दिवस' पर हरदा पहुंचे, तो वहां शराबबन्दी के लिए स्थानीय लोगों की एक कमिटी बनायी। सर्वसम्मति से शराब की दूकान को बन्द कराने के लिए एक प्रस्ताव द्वारा बिहार सरकार से निवेदन किया। छपरा में जिला शान्ति-सेना समिति की ओर से शराब की दूकान पर धरना दिया गया। बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ धनबाद की ओर से नशाबन्दी-दिवस मनाया गया।

भिण्ड में नशाबन्दी समिति की ओर से शान्तिपूर्वक शराब की दूकानों पर पिकेटिंग हुआ। चम्बल घाटी शान्ति समिति बाह की ओर से मौन जुलूस निकाला गया। जुलूस में महिलाएं भी थीं। शराब की दूकान पर चरखा-कताई, शराबियों को समझाना आदि कार्यक्रम हुए।

शांति-दिवस

राष्ट्रपिता म० गांधी के निर्वाण-दिन ३० जनवरी को देश भर में 'शांति-दिवस' मनाया गया। उस दिन मुख्यतः शांति-बिल्ले और साहित्य बेचना, मौन जुलूस, सर्वधर्म प्रार्थना; आदि कार्यक्रम हुए। जिला सर्वोदय-मण्डल बरेली, चम्बल घाटी शांति-समिति बाह, म० गांधी स्मारक निधि, छतरपुर, गांधी-स्मारक-निधि श्रीनगर, कश्मीर आदि से समाचार प्राप्त हुए।

जिला सर्वोदय मण्डल धनबाद के तत्वावधान में २६ से ३० जनवरी तक गांधी-मेला लगा। उसी समय जिला सर्वोदय सम्मेलन भी हुआ।

नरसिंहपुर में ११ ग्रामदान

मध्यप्रदेश गांधी-स्मारक निधि और प्रदेश सर्वोदय मण्डल के संयुक्त तत्वावधान में संचालित गांधी जन्म-शताब्दी ग्राम-स्वराज्य शिविर-श्रृंखला के अन्तर्गत शिविर एवं पदयात्राएं नरसिंहपुर जिले के श्रीनगर राजस्व मण्डल में सम्पन्न हुई। परिणामस्वरूप ११ ग्रामदान घोषित हुए। ८६ रु० का सर्वोदय-साहित्य तथा १५० गांधी-बिल्लों की बिक्री हुई। शिविर का संयोजन म० प्र० भूदान-यज्ञ मण्डल, नरसिंहपुर ने किया। पदयात्राओं में गांधी-निधि, भूदान-मण्डल तथा स्थानीय सहयोगियों ने भाग लिया।

बुलन्दशहर में ३६ ग्रामदान

बुलन्दशहर के गांधी-आश्रम द्वारा प्राप्त एक जानकारी के अनुसार दनकौर विकास-खण्ड के कुल ११० गांवों में २० से २३ जनवरी तक ४२ कार्यकर्ता २५ टोलियों में घूमे, फलस्वरूप ३६ ग्रामदान प्राप्त हुए।

राजस्थान में ग्रामदान अभियान

भरतपुर जिले के बाड़ी व बसेड़ी प्रखण्डों में आयोजित पांच दिन के ग्रामदान अभियान के दौरान १०२ गांव ग्रामदान में प्राप्त हुए। दोनों प्रखण्डों में कुल २३६ गांव हैं, जिनमें से १४४ गांवों में कार्यकर्ता ग्रामदान के लिए पहुंच सके थे। प्रादेशिक सर्वोदय सम्मेलन में लिये गये प्रदेशदान के संकल्प के बाद यह पहला ही ग्रामदान अभियान था। सम्मेलन से पूर्व नीमका थाना प्रखंड में अभियान चला था और सम्मेलन के अवसर पर उक्त प्रखण्ड के दान की घोषणा हुई थी। प्रदेशदान-संकल्प-पूर्ति की दिशा में अगला ग्रामदान-प्राप्ति अभियान जयपुर के शाहपुरा तथा बैराठ प्रखण्डों में १६ से २२ फरवरी '६९ तक आयोजित किया गया है।●

मुंगेर जिलादान समर्पण-समारोह सम्पन्न

प्रदेशदान का काम शीघ्र पूरा करें

जमाने को लम्बे अर्से तक इन्तजार करने का धीरज नहीं

आचार्य विनोबा की मार्मिक अपील

मध्यावधि चुनाव के सिलसिले में दो सम्प्रदायों के आपसी तनाव के कारण मुंगेर शहर का वातावरण क्षुब्ध था। धारा १४४ कायम थी और शहर में पुलिस गश्त लगा रही थी। इसलिए जिलादान-समारोह की बड़ी सभा करना सम्भव नहीं था। स्थानीय 'श्रीकृष्ण सेवा सदन' के छोटे-से मैदान में अल्प सूचनाओं से जितने लोग आ सकते थे आये। जिले के विभिन्न क्षेत्रों से आये कार्यकर्ताओं, भूदान-किसानों और ग्रामसभाओं के प्रतिनिधियों को जिला सर्वोदय मंडल के संयोजक रामनारायण बाबू ने धन्यवाद दिया। समारोह की अध्यक्षता श्री ध्वजा प्रसाद साहु ने की।

सभा में सूतांजलि-समर्पण का कार्य पहले सम्पन्न हुआ। कुल ३२ केन्द्रों से ६,६०० गुण्डियाँ आयी थीं।

श्री ब्रजमोहन शर्मा ने जिलादान का कागज बाबा को समर्पित किया। उन्होंने बताया कि जिलादान का कार्य गांधी-पुण्य-दिवस ३० जनवरी को ही पूरा हो गया था। जिलादान-अभियान का आयोजन जिलादान-प्राप्ति समिति तथा जिला सर्वोदय मंडल की ओर से किया गया था। इस अभियान में ग्राम-स्वराज्य संघ का महत्त्वपूर्ण योगदान मिला। उसी तरह जिला पंचायत परिषद का सहयोग भी विशेष रूप से प्राप्त हुआ। जिले के सभी राजनैतिक दलों का समर्थन तथा अधिकांश वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के सहयोग भी अभियानों में बराबर प्राप्त हुए।

जिलादान के आंकड़े :

कुल प्रखण्ड	३७
कुल पंचायतें	७२४
ग्रामदान में शामिल	६४०
कुल गाँव	३,३८०
ग्रामदान में शामिल (गाँव तथा टोले)	३,०४४
कुल परिवार-संख्या	५,२०,७६५
शामिल परिवार	३,७६,६१७
कुल जनसंख्या	२८,७७,७५६
शामिल जनसंख्या	२२,७६,२२९
कुल रकबा	२९,६०,६४३
शामिल रकबा	१७,६३,७६६

बाबा नें पहले सूतांजलि का महत्त्व बताते हुए कहा, "गांधीजी ने कातने पर इतना जोर लगाया कि जिस दिन मरे यानी मारे गये उस दिन कातकर मरे। एक दिन भी जीवन में नागा नहीं गया।...जो बात दूसरे को समझा दे उसके पहले उस पर खुद अमल करे, वह सज्जनों काम है, वही गांधीजी का काम था।" उन्होंने आगे सूतांजलि के विषय पर बोलते हुए कहा कि "सूतांजलि का मतलब यह नहीं है कि अनेक विधियों में एक और नयी विधि हम भी जोड़ दें। सूतांजलि को जन-शक्ति के विकास का चिह्न मानना चाहिए। सूतांजलि गुंडी के रूप में मतदान है।" उन्होंने अपनी अपेक्षा व्यक्त की कि पूरे देश की जनसंख्या ५० करोड़ है तो ५० लाख गुंडियाँ सूतांजलि के रूप में क्यों नहीं मिलनी चाहिए? कम-से-कम एक प्रतिशत की माँग है यह। लेकिन बिहार में चूँकि ज्यादा काम होता है, इसलिए यहाँ से २ प्रतिशत की अपेक्षा उन्होंने व्यक्त की और कहा कि कम-से-कम १० लाख गुण्डियाँ यहाँ से मिलनी चाहिए। उन्होंने कहा, "पूरे राज्य से सिर्फ १–१॥ लाख ही गुण्डियाँ मिलें तो यह 'पूअर शो' है।" उन्होंने अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा, "मालूम नहीं, सूतांजलि का यह काम हमारे—जिनका गांधी के साथ लगाव है—मरने के बाद चलेगा या नहीं।"

जिलादान पर बोलते हुए बाबा ने कहा, "जिलादान का काम अक्ल का काम है। इसमें किसीने किसी पर उपकार नहीं किया है, सबने अपने आप पर उपकार किया है। गाँव एक परिवार, जिला एक प्रखण्ड, प्रदेश एक जिला, देश एक प्रदेश होगा, और पृथ्वी देश बनेगी, और तब, दुनिया के हद मिटेंगे, मसले हल होंगे, शान्ति कायम होगी। आणविक शक्ति के साथ टुकड़े में रहना संभव नहीं। लोग कहते हैं कि बाबा, आपका लोभ बढ़ रहा है...लेकिन बाबा कहता है कि बाबा को तो धीरज है, लेकिन जमाने को धीरज नहीं है। बाबा को जमाने के कारण तीव्रता है। दो महीनों में बचे हुए जिले भी आप पूरे कर लें।"

मुंगेर के अशान्त वातावरण पर उन्होंने कहा कि गंगा के किनारे दंगा हमारे लिए आवाहन है। हिन्दू-मुसलमान का नाम लेकर झगड़ा करना वाहियात बात है। इससे तो हम कायम के लिए गुलाम रहेंगे। इसके लिए शांतिसेना के संगठन पर उन्होंने जोर दिया।

"हमारे उत्तम-से-उत्तम कार्यकर्ता शरीर से क्षीण और कमजोर हो रहे हैं।" इस बात पर भी अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि कार्यकर्ताओं को अपना शरीर अपना नहीं, जनता का मानना चाहिए। उन्होंने अपनी मजबूरी प्रकट करते हुए कहा कि हम उन्हें दूध-दही तो दे नहीं सकते, क्योंकि हमारे पास है नहीं, लेकिन एक सलाह दे सकते हैं कि उन्हें खूब सोना चाहिए। सब चिन्ताओं से मुक्त होकर नाम-स्मरण करके सोना चाहिए, ताकि गाढ़ी निद्रा आये।

अन्त में श्री ध्वजा प्रसाद साहु ने कहा कि इस काम को सब लोग अपना मान लें तो काम आसान हो जायेगा। —कृष्णा कुमार

विनोबाजी का पता

द्वारा—'लक्ष्मीनारायण भवन',
नया बाजार, भागलपुर-२

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।